| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ४३२ | विश्वकर्मा विद्याप्रकाश [ घर बनानेकी सम्पूर्ण क्रिया वर्णित है ] .... .... .... | २ | ०-६ | ०-१ |
| | सूर्यसिद्धान्त संस्कृत टीका और भाषाटीका समेत ( ज्योतिष ) .... .... .... | २ | २-० | ०-४ |
| ४३४ | मानसप्रश्नदीपिका भाषा .... .... | २ | ०-३ | ०-॥ |
| ४३५ | विवाहवृन्दावन सटीक .... .... | २ | १-० | ०-२ |
| ४३६ | राजमार्तण्ड ( भोजराज प्रणीत ) .... | २ | ०-१२ | ०-२ |
| ४३७ | ताजिकभूषण भाषाटीका .... .... | २ | ०-८ | ०-१ |
| ४३८ | नष्टजन्माङ्गदीपिका और पंचागदीपिका गद्य-पद्यटीका समेत ( ऐसी उपयोगी कुंजीहैं जो हजारों रु० खर्चसेभी अलभ्यहैं ज्योतिषी इससे अमूल्य लाभ पावेंगे ) .... | २ | ०-४ | ०-॥ |
| ४३९ | प्रश्नवैष्णवभाषाटीका ( अनेकप्रश्नोंका भलीभांति वर्णन है ) .... .... .... | २ | ०-८ | ०-१ |
| ४४० | कररेखासंख्यावली(छंदवद्ध सुगमसामुद्रिक) | २ | ०-४ | ०-॥ |
| ४४१ | रमलभास्कर हिंदीभाषामें .... .... | श्री | ०-४ | ०-॥ |
| ४४२ | प्रश्नचंडेश्वर भाषाटीका .... .... | २ | ०-१२ | ०-२ |
| ४४३ | मुहूर्त्तमार्त्तण्ड संस्कृत भाषाटीकासह | २ | १-० | ०-२ |
| ४४४ | संकेतनिधिसटीक .... .... .... | २ | १-४ | ०-३ |
| ४४५ | सामुद्रिक शास्त्र बडा सान्वय भाषाटीका | २ | १-४ | ०-३ |
| ४४६ | लग्नचंद्रिका मूल ९ आनें और भाषाटीका | २ | ०-१० | ०-१ |
| ४४७ | मकरंदसारिणी उदाहरण सहित .... | २ | ०-१० | ०-२ |
| ४४८ | भावकुतूहल भाषाटीका .... .... | २ | १-० | ०-२ |
| ४४९ | दैवज्ञविनोद ( ज्योतिषग्रन्थ ) .... | मनीराम | २-० | ०-४ |
| ४५० | प्रश्नपयोनिधि भाषाटीका .... .... | क | ०-२ | ०-॥ |
| ४५१ | ज्योतिःशास्त्र निघंटु.... .... .... | क | ०-२ | ०-॥ |
| ४५२ | संवत्सरफलदीपिका भाषामें .... | क | ०-३ | ०-॥ |
| ४५३ | मासचिंतामणी भा० टी० .... .... | क | ०-३ | ०-॥ |

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना-गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " छापाखाना, कल्याण-मुंबई.

॥ श्रीः ॥

# अथ मुहूर्त्तचिन्तामणिस्थविषयाणामनुक्रमणिका।


| विषयः. | पृष्ठांकः. |
|---|---|
| मङ्गलाचरणम् .... | .... १ |
| ग्रन्थप्रयोजनम् .... | .... २ |
| संबंधाधिकारिप्रयोजनकथनम्. | ३ |
| ज्योतिःशास्त्राध्ययनफलम् .... | ,, |
| नक्षत्रसूचकस्य श्राद्धभोजने निषेधः .... | .... ४ |
| मुहूर्तप्रयोजनम् .... | .... ५ |
| तिथीशाः .... | .... ९ |
| तिथीनां संज्ञा फलं च | .... ,, |
| सिद्धियोगाः .... | .... ,, |
| रव्यादिवारेषु यथाक्रमं निषिद्धतिथयो दग्धनक्षत्राणि च. | १० |
| क्रकचादिनिन्द्ययोगाः | .... ११ |
| कृत्यविशेषेषु निषिद्धतिथयः.... | ,, |
| सूर्यादिवारेषु दग्धादियोगचतुष्टयम् .... | .... १२ |
| चैत्रादिमासे शून्यतिथयः | .... १३ |
| तिथिनक्षत्रसंबन्धिदोषाः | .... १४ |
| चैत्रादिमासेषु शून्यनक्षत्राणि. | १५ |
| चैत्रादिषु शून्यराशयः | .... १६ |
| विषमतिथिषु दग्धलग्नानि | .... ,, |
| दुष्टयोगानां शुभकृत्यावश्यकत्वे परिहारः .... | .... ,, |
| शुभकार्येषु सिद्धिदानामपि हस्तार्कादियोगानां निन्द्यत्वम्. | १७ |
| भौमाश्विनीत्यादिकानां सिद्धियोगानां कार्यविशेषेऽतिनिन्द्यत्वम् .... | .... १७ |
| आनन्दाद्यष्टाविंशतियोगाः | .... १८ |
| आनन्दादियोगानां गणनोपायः. | ,, |
| आनन्दादिषु कियतां दुष्टयोगानामावश्यककृत्ये परिहारः .... | .... ,, |
| दोषापवादभूतरवियोगाः | .... १९ |
| सूर्यादिवारेषु नक्षत्रविशेषैः सिद्धियोगाः | .... ,, |
| उत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगाः. | २० |
| दुष्टयोगानां देशभेदेन परिहारः. | ,, |
| समस्तशुभकृत्ये वर्ज्यपदार्थाः.... | २१ |
| ग्रहणनक्षत्रे ग्रासभेदेन निंद्या मासा दिवसाश्च | .... २२ |
| सामान्यतोऽवश्यंवर्ज्यानि पञ्चाङ्गदूषणादीनि | .... २३ |
| पक्षरन्ध्रतिथय आवश्यकत्वे तन्निष्ठवर्ज्यघटिकाश्च | .... २४ |
| कुलिकादिदोषाः | .... ,, |
| सूर्यादिवारेषु दुर्मुहूर्त्ताः | .... २५ |
| विवाहादिशुभकृत्ये देशपरत्वेन होलिकाष्टकनिषेधः. | .... २६ |
| मृत्युक्रकचादिदुष्टयोगानां परिहारः .... | .... ,, |

| विषयः. | पृष्ठांकः. | विषयः. | पृष्ठांकः. |
| --- | --- | --- | --- |
| तेषां पुनरपवादः | .... २७ | लघुनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च | .... ४० |
| भद्रानिषेधः .... | .... ,, | मृदुनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च | .... ,, |
| चतुर्थ्यादितिथिषु भद्राया मुखपुच्छविभागः | .... २८ | तीक्ष्णनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च | .... ,, |
| भद्रापरिहारः .... | .... ,, | अधोमुखोर्ध्वमुखतिर्यङ्मुख-नक्षत्राणि .... | .... ४१ |
| भद्रानिवासस्तत्फलं च | .... २९ | प्रवालदन्तशंखसुवर्णवस्त्रप-रिधानमुहूर्ताः.... | .... ४२ |
| कालशुद्धौ गुरुशुक्रास्तादिके निषेध्यवस्तूनि .... | .... ,, | नवधा विभक्तस्य वस्त्रस्य दग्धादिदोषे शुभाशुभफलम्. | ,, |
| सिंहमकरस्थगुर्वादिष्वतिदेश.... | ३१ | क्वचिद्दुष्टदिनेऽपि वस्त्रपरिधानम्. | ४३ |
| सिंहस्थगुरोः प्रकारत्रयेण परिहारः .... | .... ३३ | लतापादपारोपणराजदर्शनमद्य-गोक्रयविक्रयमुहूर्ताः | .... ,, |
| सिंहराशिगते गुरौ निषेधवाक्यानां प्रतिप्रसववाक्यानां च निर्गलितोऽर्थः | .... ३४ | पशूनां रक्षामुहूर्तः स्थितिनिवे-शे निषेधमुहूर्तश्च | .... ४४ |
| पुनः मकरस्थितगुरोः प्रकारद्वयेन परिहारः .... | .... ,, | औषधसूच्योर्मुहूर्त्तः | .... ,, |
| लुप्तसंवत्सरदोषोपवादसहितः.... | ३५ | क्रयविक्रयनक्षत्राणि | .... ४५ |
| वारप्रवृत्तिः .... | .... ३६ | विक्रयविपण्योर्मुहूर्त्तः | .... ४६ |
| वारप्रवृत्तिप्रयोजनपुरस्सरं कालहोरा .... | .... ३७ | अश्वहस्तिकृत्यमुहूर्त्तः | .... ,, |
| कालहोराप्रयोजनमन्यच्च | .... ,, | भूषाघटनादिमुहूर्त्तः | .... ४७ |
| मन्वादियुगादीनां निर्णयस्त-न्निषेधश्च .... | .... ३८ | मुद्रापातननववस्त्रक्षालनमुहूर्त्तः. | ४८ |
| अथ नक्षत्रप्रकरणम् २ । | | खड्गादिधारणशय्यांशुपभो-गमुहूर्तः .... | .... ४९ |
| नक्षत्रस्वामिनः .... | .... ३९ | अन्धादिनक्षत्राणि | .... ५० |
| ध्रुवनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च | .... ,, | अन्धादिनक्षत्राणां फलम् | .... ,, |
| चरनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च | .... ४० | धनप्रयोगे निषिद्धनक्षत्राणि | .... ,, |
| उग्रनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च | .... ,, | जलाशयखननतृत्यारम्भ-योर्मुहूर्त्तः .... | .... ५१ |
| मिश्रनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च | .... ,, | सेवकस्य स्वामिसेवायां मुहूर्त्तः | ,, |
| | | द्रव्यप्रयोगऋणग्रहणयोर्मुहूर्त्तः. | ५२ |

| विषयः | पृष्ठांकः |
|---|---|
| हलप्रवहणमुहूर्त्तः.... | .... ५३ |
| बीजोप्तिमुहूर्त्तः फणिचक्रं च .... | ,, |
| शिरामोक्षणविवेकादिधर्मक्रियामुहूर्त्तः .... | .... ५५ |
| धान्यच्छेदनमुहूर्त्तः | .... ,, |
| कणमर्दनसस्यरोपणमुहूर्त्तः | .... ५६ |
| धान्यस्थितिर्धान्यवृद्धिश्च | .... ,, |
| शान्तिकपौष्टिकादिकृत्यमुहूर्त्तः. | ,, |
| होमाहुतिशुद्धिः .... | .... ५७ |
| वह्निनिवासस्तत्फलं च | .... ,, |
| प्रतिवर्षोत्पन्ननवान्नभक्षणमुहूर्त्तः. | ५८ |
| नौकाघटनमुहूर्त्तः.... | .... ,, |
| वीरसाधनाभिचारयोर्मुहूर्त्तः .... | ५९ |
| रोगनिर्मुक्तस्नानमुहूर्त्तः | .... ,, |
| शिल्पविद्यामुहूर्त्तः | .... ,, |
| संधानमुहूर्त्तः .... | .... ६० |
| परीक्षामुहूर्त्तः .... | .... ,, |
| सामान्यतः शुभकार्येषु लग्नशुद्धिः .... | .... ६१ |
| नक्षत्रेषु ज्वरोत्पत्तौ सत्यां तन्निवृत्तौ दिनसंख्या | .... ६२ |
| शीघ्ररोगिमरणे विशिष्टयोगः. | ६३ |
| प्रेतदाहमुहूर्त्तः प्रेतदाहादिनिषेधश्च .... | .... ,, |
| काष्ठानां गोमयपिंडानां च संग्रहमुहूर्तः .... | .... ६४ |
| त्रिपुष्करयोगस्तत्फलं च | .... ,, |
| शवप्रतिकृतिदाहे निषिद्धकालः. | ६५ |
| शवप्रतिकृतिदाहे वर्ज्यमध्यमोत्तमनक्षत्राणि | .... ,, |
| अभुक्तमूलस्वरूपम् | .... ६६ |
| मूलाश्लेषानक्षत्रोत्पन्नस्य चरणवशेन शुभाशुभफलम्. | ६८ |
| मूलवृक्षविचारः .... | .... ,, |
| मूलाश्लेषाजातयोः पुत्रकन्ययोरंगविभागेन फलम् | .... ६९ |
| मूलनिवासस्तत्फलं च | .... ७० |
| दुष्टेषु गंडांतादिनिमित्तेषु जातस्यारिष्टपरिहारः | .... ,, |
| मूलशान्तिः .... | .... ७१ |
| शतौषधीमूलानि .... | .... ,, |
| आश्लेषाशान्तिविधिः | .... ७६ |
| गण्डान्तशान्तिविधिः | .... ७७ |
| ज्येष्ठाशान्तिविधिः | .... ,, |
| दुष्टयोगशांतिः .... | .... ७८ |
| सूर्यसंक्रान्तिव्यतिपातवैधृतियोगानां शान्तिः | .... ७९ |
| कुहूसिनीवालीदर्शनिर्णयः | .... ८० |
| सिनीवालीकुहूशांतिः | .... ,, |
| दर्शशान्तिः .... | .... ८३ |
| कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः | .... ,, |
| एकनक्षत्रजननशान्तिः | .... ८४ |
| गोमुखप्रसवशांतिः | .... ८५ |
| त्रीतरशांतिः .... | .... ८६ |
| सूर्यचंद्रग्रहणजननशांतिः | .... ,, |
| ज्वराद्युत्पत्तिकालीनक्षत्रशांतिः. | ८७ |
| नक्षत्रदेवताध्यानानि | .... ८९ |
| काकमैथुनदर्शनशांतिः | .... ९० |
| कपोतादिशांतिः .... | .... ९१ |

| विषयः. | पृष्ठांकः. |
|---|---|
| पल्लीसरटारोहणे फलं शांतिश्च. | ९१ |
| अश्विन्यादिनक्षत्राणां तारकामानम्.... | ...., |
| अश्विन्यादिनक्षत्राणां स्वरूपम् .... | .... ९२ |
| जलाशयारामदेवप्रतिष्ठामुहूर्तः. | ९३ |
| देवप्रतिष्ठायां सामान्यतो लग्नशुद्धिः .... | .... ,, |
| **अथ संक्रान्तिप्रकरणम् ३।** | |
| नक्षत्रवारवशेन संक्रान्तिसंज्ञा फलं च .... | .... ९५ |
| दिनरात्रिविभागेन संक्रान्तिफलं उत्तरायणदक्षिणायनसंज्ञा च. | ९६ |
| अवशिष्टसंक्रान्तिषु षडशीतिमुखाः संज्ञाः | .... ९७ |
| संक्रान्तौ गौणमुख्यपुण्यकालः .... | .... ,, |
| अर्द्धरात्रसमये मकरकर्कटयोश्च विशेषः | .... ९८ |
| उदयास्तादिवचनस्यापवादः .... | .... ९९ |
| विष्णुपदादिषु विशेषः | .... १०० |
| सायनांशसंक्रान्तिषु पुण्यकालः. | १०१ |
| संक्रांत्युपयोगिजघन्यबृहत्समनक्षत्राणि.... | .... १०२ |
| संज्ञाप्रयोजनम् .... | .... १०३ |
| कर्कसंक्रान्तौ विंशोपकाः | .... ,, |
| कीदृशस्य रवेः संक्रमो जातस्तत्फलम् | .... १०४ |
| संक्रान्तेः करणपरत्वेन सफलवाहनादिः | .... १०५ |
| संक्रान्तिवशेन शुभाशुभफलम्. | १०६ |
| कार्यविशेषे ग्रह विशेषे बलं सामान्यतो ग्रहबलं च .... | ,, |
| अधिमासक्षयमासनिर्णयः .... | १०७ |
| **अथ गोचरप्रकरणम् ४।** | |
| रव्यादिग्रहाणां गोचरफलम्. | १०८ |
| बुधगुरुशुक्राणां गोचरफलम्. | १०९ |
| वामवेधःशुक्लपक्षे चन्द्रबलं च. | ११० |
| द्विविधवेधे मतद्वयम् | .... ,, |
| ग्रहेण नक्षत्रफलं ग्रहेण राहुगोचरफलं ग्रहाणां शुभप्रतीकारो दुष्टग्रहणदर्शननिषेधश्च. | १११ |
| चन्द्रबले विशेषः.... | .... ११७ |
| चन्द्रबलस्य विधानान्तरम् .... | ११८ |
| ग्रहाणां नवरत्नसमुदायधारणम् .... | .... ,, |
| असति द्रव्यसामर्थ्ये तत्तद्ग्रहरत्नधारणम् | .... ११९ |
| अल्पमूल्यरत्नानि ताराबलं च. | ,, |
| शेषक्रमेण सफलास्ताराः | .... १२० |
| अवश्यकृत्ये दुष्टताराणां परिहारः .... | .... ,, |
| चन्द्रावस्थागणनोपायः | .... १२१ |
| द्वादशावस्थानामानि.... | .... ,, |
| सफलानि द्वादशावस्थानामानि. | ,, |
| ग्रहाणां वैकृतपरिहारः .... | ,, |
| औषधजलस्नानं दक्षिणाश्च.... | ,, |

| विषयः. | पृष्ठांकः. |
|---|---|
| सूर्यादयो ग्रहाः गन्तव्यराशेः फलं कियद्भिर्दिनैः दद्युरित्येतत् .... | .... १२२ |
| प्रसंगादावश्यककृत्ये दुष्टे तिथ्यादौ दानम् | .... ,, |
| सूर्यादिग्रहाणां राश्यन्तरगमे फलम् .... | .... ,, |
| **अथ संस्कारप्रकरणम् ५ ।** | |
| शुभफलसूचकप्रथमरजोदर्शनम्. | १२३ |
| प्रथमरजोदर्शने शुभमध्याशुभनक्षत्राणि .... | .... १२४ |
| निन्द्यरजोदर्शनम् | .... ,, |
| प्रथमरजस्वलायाः स्नानमुहूर्त्तः. | १२५ |
| गर्भाधानमुहूर्त्तः | .... ,, |
| गर्भाधाने लग्नबलम् | .... १२६ |
| सीमन्तोन्नयनमुहूर्त्तः | .... १२७ |
| मासेश्वराः स्त्रीणां चंद्रबलं च. | १२८ |
| पुंसवनमुहूर्त्तः विष्णुबलिमुहूर्त्तश्च .... | .... १२९ |
| जातकर्मनामकरणयोर्मुहूर्त्तः. | ,, |
| सूतिकास्नानमुहूर्त्तः | .... १३० |
| प्रथमादिमासोत्पन्नदन्तफलम्. | १३१ |
| दोलाचक्रम्. .... | .... १३२ |
| दोलारोहणमुहूर्त्तः .... | ,, |
| निष्क्रमणमुहूर्त्तश्च | .... ,, |
| जलपूजामुहूर्त्तः दुग्धप्राशनमुहूर्त्तश्च .... | .... १३३ |
| अन्नप्राशनमुहूर्त्तः | .... ,, |
| लग्नबलम् .... | .... १३४ |
| ग्रहाणां स्थानवशात्फलानि.... | १३५ |
| भूम्युपवेशनमुहूर्त्तः | .... १३६ |
| भूम्युपवेशनकाले एव जीविकापरीक्षा | .... ,, |
| शिशोस्ताम्बूलभक्षणमुहूर्त्तः. | ,, |
| कर्णवेधमुहूर्त्तः .... | .... १३७ |
| कर्णवेधे लग्नशुद्धिः | .... १३८ |
| चूडाकर्मनिषेधकालः | .... ,, |
| तत्प्रसंगतोऽन्यकर्मनिषेधकालश्च .... | .... ,, |
| गुरुशुक्रयोर्बाल्यवार्द्धकदिनसंख्या .... | .... १३९ |
| परमते बाल्यवार्द्धक्यदिनसंख्या .... | .... १४० |
| चौलमुहूर्त्तः .... | .... ,, |
| मातरि सगर्भायां चौले विशेषः. | १४२ |
| चौले दुष्टतारापवादः | .... १४३ |
| चौलादिकृत्ये कालविशेषनिषेधः .... | .... ,, |
| सामान्यक्षौरादिमुहूर्त्तस्तन्निषेधककालश्च .... | .... १४४ |
| क्षौरस्य विधिनिषेधौ | .... ,, |
| राज्ञां क्षौरे विशेषः वर्ज्यनक्षत्राणि च | .... १४५ |
| अक्षरारम्भमुहूर्त्तः .... | .... १४६ |
| विद्यारम्भमुहूर्त्तः | .... १४७ |
| व्रतबन्धः .... | .... ,, |
| तस्य कालत्रयं नित्यकाम्यगौणभेदेन | .... १४८ |

| विषयः. | पृष्ठांकः. |
|---|---|
| व्रतबंधे नक्षत्राणि | १४९ |
| व्रतबंधे सामान्यतो लग्नसंयोगः | १५० |
| व्रतबंधे लग्नशुद्धिः | ,, |
| वर्णाधीशाः शाखेशाश्च | १५१ |
| वर्णेशशाखेशप्रयोजनम् | ,, |
| सामान्यतो निषिद्धजन्ममासादेः प्रतिप्रसवः | १५२ |
| गुरुबलम् | १५३ |
| गुरुदौष्ट्यापवादः | १५४ |
| व्रतबंधे वर्ज्यपदार्थाः | १५५ |
| व्रतबंधे रव्याद्यंशफलम् | ,, |
| चंद्रनवांशफलं सापवादम् | १५६ |
| केंद्रस्थसूर्यादिग्रहाणां फलम्. | ,, |
| चंद्रगुरुशुक्राणां ग्रहयोगे फलम् | ,, |
| चंद्रादिवशेन शुभाशुभयोगौ. | १५७ |
| व्रते अनध्यायाः | ,, |
| प्रदोषलक्षणम् | १५९ |
| बह्वृचां ब्रह्मौदनसंस्कारः | १६० |
| वेदपरत्वेन नक्षत्रविशेषः | ,, |
| धर्मशास्त्रीयविशेषः | १६१ |
| छुरिकाबंधनमुहूर्त्तः | १६२ |
| केशांतसमावर्तनमुहूर्तौ | ,, |
| **अथ विवाहप्रकरणम् ६ ।** | |
| विवाहे लग्नशुद्धिकथनम् | १६३ |
| प्रश्नलग्नाद्विवाहयोगद्वयम् | १६४ |
| अन्यद्विवाहयोगद्वयम् | ,, |
| प्रश्नलग्नाद्वैधव्ययोगत्रयम् | १६५ |
| प्रश्नलग्नात्कुलटामृतवत्सायोगः | १६५ |
| विवाहभंगयोगः | ,, |
| बालवैधव्ययोगस्तत्परिहारः. | १६६ |
| पिप्पलव्रतम् | १६७ |
| कुंभविवाहः | ,, |
| अश्वत्थविवाहः | ,, |
| विष्णुप्रतिमादानविधिः | ,, |
| अस्याः कन्यायाः कीदृशं प्रथमापत्यं भवितेति प्रश्ने उत्तरम् | १६९ |
| सामान्यतो निमित्तवशेन शुभाशुभप्रश्नः | ,, |
| कन्यावरणमुहूर्त्तः | १७० |
| वरवरणमुहूर्त्तः | ,, |
| कन्याविवाहकालः ग्रहशुद्धिश्च. | १७१ |
| विहितमासाः | १७२ |
| मासप्रसंगाज्जन्ममासादिनिषेधविषयः | १७३ |
| ज्येष्ठमासप्रयुक्तो विशेषः | १७४ |
| अन्योऽपि विशेषः | १७५ |
| प्रतिकूलनिर्णयः | १७८ |
| विवाहानंतरं पुरुषत्रये चूडादिनिषेधः | १७९ |
| मूलादिदुष्टनक्षत्रोत्पन्नयोर्वधूवरयोः श्वशुरादिपीडकत्वम् | ,, |
| तदपवादः | १८० |
| अष्टकूटानां नामानि | १८१ |
| वर्णकूटम् | ,, |

| विषयः. | पृष्ठांकः. | विषयः. | पृष्ठांकः. |
|---|---|---|---|
| वश्यकूटम् .... | .... १८१ | अन्यदपि .... | .... १९६ |
| ताराकूटम् .... | .... ,, | त्रिषर्टीदोषः .... | .... १९७ |
| योनिकूटम् .... | .... १८२ | दिवामुहूर्त्ताः .... | .... १९८ |
| ग्रहमैत्री .... | .... १८३ | रात्रिमुहूर्त्ताः .... | .... ,, |
| गणकूटं तत्फलं च | .... १८४ | वारभेदेन दुर्मुहूर्त्ताः | .... ,, |
| राशिकूटं तत्फलं च | .... १८५ | वेधदोषविवक्षया विहितनक्षत्रादिक्रमभिजिन्मानं च | .... १९९ |
| दुष्टभकूटस्य परिहारः | .... ,, | वेधदोषः .... | .... ,, |
| दुष्टानां गणकूटभकूटग्रहकूटानां परिहारः | .... १८७ | पंचशलाकाचक्रम् | .... ,, |
| नाडीकूटं तदपवादश्च | .... ,, | सप्तशलाकावेधः.... | .... २०० |
| पूर्वमध्यापरभागयोगीनि नक्षत्राणि .... | .... १८९ | क्रूराक्रांतादिनक्षत्रदोषः सापवादः .... | .... ,, |
| प्राच्यसंमतं वर्गकूटम् | .... १९० | लत्तादोषः .... | .... २०१ |
| नक्षत्रराश्यैक्ये विशेषः | .... ,, | पातदोषः .... | .... ,, |
| सेवकादिभस्य स्वाम्यादिभात्पूर्वत्वे विशेषः | .... १९१ | सूर्यचंद्रक्रांतिसाम्यापरपर्यायो महापातदोषः | .... ,, |
| राशिस्वामिनः नवांशविधिश्च. | ,, | खार्जूरदोषः .... | .... २०२ |
| होराविधिः .... | .... ,, | उपग्रहदोषः .... | .... ,, |
| त्रिंशांशाः .... | .... १९२ | पातोपग्रहलत्तास्वपवादः | .... २०३ |
| द्रेष्काणांशाः .... | .... ,, | वारदोषभेदे कुलिकः | .... ,, |
| द्वादशांशाः सफलः षड्वर्गोपसंहारश्च .... | .... ,, | दग्धतिथ्याख्यदोषः | .... २०४ |
| | | जामित्रदोषः .... | .... ,, |
| गंडांतदोषः .... | .... १९३ | एकार्गलदोषाणामपवादः | .... २०५ |
| नक्षत्रगंडांतः .... | .... ,, | केषांचिद्दोषाणां देशविशेषेण परिहारः .... | .... ,, |
| लग्नगंडांतः .... | .... १९४ | | |
| तिथिगंडांतः .... | .... ,, | दशयोगदोषाः .... | .... २०६ |
| कर्तरीदोषः .... | .... ,, | दशयोगफलं तदपवादश्च | .... ,, |
| संग्रहदोषः .... | .... १९५ | बाणदोषः पंचकाख्यः | .... २०७ |
| अष्टमलग्नदोषः सापवादः | .... ,, | प्राच्यमतेन बाणः सापवादः. | ,, |

| विषयः. | पृष्ठांकः. |
|---|---|
| समयवारकर्मभेदेन त्रिविधो बाणपरिहारः | २०८ |
| ग्रहाणां दृष्टिः | २०९ |
| उदयास्तशुद्धिः | ,, |
| उदयास्तशुद्धेर्द्वितीयः प्रकारः. | २१० |
| उदयास्तशुद्धिस्तृतीया | २११ |
| सूर्यसंक्रमणाख्यदोषः | ,, |
| सर्वग्रहाणां संक्रांतिघट्यः | २१२ |
| पंग्वंधकाणबधिराख्यलग्नदोषाः. | ,, |
| परमतेन पग्वंधबधिरलग्नदोषा. | ,, |
| तेषां प्रयोजनं सापवादम् | २१३ |
| विहितनवांशाः | ,, |
| विहितनवांशे क्वचिन्निषेधः | ,, |
| सर्वथा लग्नभंगयोगः | २१४ |
| रेखाप्रदग्रहाः | ,, |
| कर्तर्यादिमहादोषापवादः | ,, |
| विवाहे अब्ददोषाद्यनेकदोषापवादः | २१५ |
| उक्तानुक्तदोषसमूहपरिहारः. | २१६ |
| सामान्यतो दोषसमूहपरिहारः. | ,, |
| लग्नविंशोपकाः | २१७ |
| ग्रहवशेन सप्रयोजनः श्वशुरादिविभागः | ,, |
| संकीर्णजातीनां विवाहे विशेषः. | २१८ |
| गांधर्वादिविवाहे विशेषः | ,, |
| विवाहात्प्राक्कर्त्तव्यानामावश्यककृत्यानां दिनशुद्धिः. | २१९ |
| वेदीलक्षणं मंडपोद्वासने दिननियमश्च | ,, |
| तैलादिलापने संख्यानियमः. | २२० |
| मंडपादौ स्तंभनिवेशनम्ः | ,, |
| गोधूलिप्रशंसा | ,, |
| गोधूलिभेदाः | २२१ |
| गोधूलिसमयेऽवश्यवर्ज्यानि. | २२२ |
| सूर्यस्पष्टगतिः | ,, |
| सूर्यस्य तात्कालिकीकरणम्. | ,, |
| इष्टकालिकलग्नानयनम् | २२३ |
| रविलग्नाभ्यां इष्टघटिकानयनम्. | ,, |
| घटिकानयने विशेषः | ,, |
| विवाहादौ अवश्यं वर्ज्यानि | २२४ |
| **अथ वधूप्रवेशप्रकरणम् ७ ।** | |
| वधूप्रवेशमुहूर्तः | २२६ |
| वधूप्रवेशे नक्षत्रशुद्धिः | २२७ |
| विवाहप्रथमाब्दे वध्वाः पित्रादिगृहवासे मासदोष | ,, |
| **अथ द्विरागमनप्रकरणम् ८ ।** | |
| द्विरागमनमुहूर्त्तः | २२८ |
| सन्मुखशुक्रदोषः | २२९ |
| प्रतिशुक्रापवादः | ,, |
| **अथाग्न्याधानप्रकरणम् ९ ।** | |
| अग्न्याधानसोमयागादिमुहूर्त्तः. | २३१ |
| अग्न्याधानलग्नशुद्धिः | २३२ |
| **अथ राज्याभिषेकप्रकरणम् १० ।** | |
| यागकर्तृत्वयोगाः | २३२ |
| कालशुद्धिः | ,, |
| राजाभिषेकनक्षत्राणि लग्नशुद्धिश्च | २३३ |

| विषयः. | पृष्ठांकः. |
| --- | --- |
| राजाभिषेके विशेष .... | २३३ |
| **अथ यात्राप्रकरणम् ११ ।** | |
| यात्राधिकारिणः .... | २३५ |
| प्रश्नादेः फलम् .... | २३६ |
| अन्यौ प्रश्नौः .... | ,, |
| अशुभफलदप्रश्नः .... | २३७ |
| याता कस्यां दिशि गमिष्यतीति प्रश्नलग्ने विशेषः. | २३८ |
| योगांतरम् .... | ,, |
| यात्राकालः .... | ,, |
| तिथ्यादिशुद्धिः.... | २३९ |
| वारशूलनक्षत्रशूलौ .... | २४० |
| वारशूलनक्षत्रशूलापवादः कालशूलश्च .... | २४१ |
| मध्यमानां निषिद्धानां च केषांचित् भानां वर्ज्यघटिकाः | ,, |
| मतांतरेण वर्ज्यघटिकाः .... | २४२ |
| भानां जीवपक्षादिकाः संज्ञाः. | ,, |
| जीवपक्षादीनां फलम् .... | २४३ |
| सफलो अकुलकुलाकुलकुलगणः .... | ,, |
| पथिराहुचक्रम् .... | २४४ |
| पथिराहुचक्रफलम् .... | २४५ |
| तिथिचक्रं तत्फलम् .... | ,, |
| सर्वांकिज्ञानम् .... | २४८ |
| अडलभ्रमणदोषौ .... | ,, |
| हन्नराख्ययोगः.... | ,, |
| घबाडं टेलकं गौरवं च .... | २४९ |
| घातचंद्रस्तत्परिहारश्च .... | ,, |

| विषयः. | पृष्ठांकः. |
| --- | --- |
| घाततिथयः .... | २५० |
| घातवाराः .... | ,, |
| घातनक्षत्राणि घातलग्नानि च. | २५१ |
| योगिनीदोषाः .... | ,, |
| कालपाशाख्ययोगौ .... | ,, |
| परिघदंडदोषः .... | २५२ |
| विदिक्षु गमने नक्षत्राणि परिघदंडापवादश्च .... | ,, |
| अन्यदपि .... | २५३ |
| अयनशुद्धिः .... | २५४ |
| संमुखशुक्रदोषः तत्परिहारकदानं शांतिश्च .... | ,, |
| शुक्रस्य वक्रास्तादिदोषः सापवादः .... | २५५ |
| अन्यदनिष्टलग्नं शुभलग्नं च.... | २५७ |
| अन्यदनिष्टलग्नम् .... | ,, |
| अन्यच्छुभलग्नम् .... | २५८ |
| शुभलग्नानि .... | २५९ |
| दिनस्वामिनः .... | ,, |
| दिगीशनिर्णयप्रयोजनम् .... | ,, |
| लालाटिकयोगाः .... | २६० |
| पर्युषितयात्रायोगचतुष्टयम्.... | २६१ |
| समयबलम् .... | ,, |
| लग्नादिभावानां संज्ञाः .... | २६२ |
| एषां फलप्रदग्रहाः .... | ,, |
| योगयात्रा तदारंभःप्रयोजनं च. | ,, |
| योगयात्रा .... | ,, |
| योगयात्रालग्नानि .... | २६३ |
| विजयादशमीमुहूर्त्तः .... | २७५ |

| विषयः. | पृष्ठांकः. | विषयः. | पृष्ठांकः. |
|---|---|---|---|
| अन्यदपि .... | .... २७५ | उक्तव्यतिरिक्तानां सामान्यतः प्रादक्षिण्येन शकुनम् .... | २९१ |
| यात्रायामवश्यनिषिद्ध-निमित्तानि. | .... २७६ | विरुद्धशकुने परिहारः .... | २९२ |
| एकदिनसाध्यगमनप्रवेशे विशेषः .... | .... २७७ | यात्रानिवृत्तौ गृहप्रवेशमुहूर्तः. | २९३ |
| प्रयाणे नवमीदोषः | .... ,, | विवाहप्रकरणोक्तदोषा यात्रायां वर्ज्याः .... | .... ,, |
| यात्रादिनियमविधिः | .... ,, | अन्ये दोषाः .... | .... २९४ |
| नक्षत्रदोहदाः .... | .... २७८ | **अथ वास्तुप्रकरणम् १२ ।** | |
| दिग्दोहदः .... | .... २७९ | ग्रामपुरादिषु गृहनिर्माणे स्वस्य शुभाशुभम् | .... २९५ |
| वारदोहदः .... | .... ,, | राशिपरत्वेन ग्रामनिवासे निषिद्धस्थानानि | .... २९७ |
| तिथिदोहदः .... | .... २८० | इष्टभूम्या विस्तारायामौ | .... ,, |
| गमनसमये विधिः | .... २८१ | आर्यैः वर्णपरत्वेन च द्वारनिवेशनम् | .... २९९ |
| दिश्ययानानि .... | .... ,, | गृहारंभे विशिष्टकालनिषेधः. | ३०० |
| निर्गमनस्थानानि | .... ,, | व्ययकथनपुरःसरमंशकज्ञानं सफलम् .... | .... ३०१ |
| गमनविलंबे वर्णक्रमेण प्रस्थानवस्तूनि | .... ,, | शालाध्रुवाद्यानयनम् | .... ३०२ |
| प्रस्थानपरिमाणम् | .... २८२ | ध्रुवादीनां नामाक्षरसंख्या .... | ,, |
| मतभेदेन प्रस्थानपरिमाणम्. | ,, | शुभाशुभज्ञानाय षोडशगृहनामानि .... | .... ३०३ |
| प्रस्थानादिनसंख्या मैथुननिषेधश्च .... | .... ,, | गृहस्यायादिनवकम् | .... ,, |
| प्रस्थानकर्तुर्नियमाः | .... २८४ | गृहारंभे वृषवास्तुचक्रम् | .... ३०५ |
| अकालवृष्टिदोषः | .... २८५ | सौरचांद्रमासैकवाक्येन प्राच्यादिदिक्षु द्वाराणि गृहनिर्माणनक्षत्राणि | .... ३०६ |
| दुष्टशकुनशांतिः दानं च .... | २८६ | सूतिकागृहनिर्माणप्रवेशौ च. | ३०८ |
| शुभसूचकशकुनानि | .... २८७ | प्रागभिहितसौरचांद्रमासानां | |
| अशुभसूचकशकुनानि | .... २८९ | | |
| अन्यशकुनानि .... | .... २९० | | |
| कोकिलादीनां वामभागे श्रेष्ठत्वम् .... | .... २९१ | | |
| छिक्कारादीनां दक्षिणभागे शुभत्वम् .... | .... ,, | | |

| विषयः. | पृष्ठांकः. | विषयः. | पृष्ठांकः. |
|---|---|---|---|
| प्रकारांतरेणैकवाक्यतया तदुक्तिः .... | .... ३०८ | अन्ययोगः .... | .... ३१६ |
| तिथिपरत्वेन द्वारनिषेधः .... | ३१० | द्वारचक्रं सफलम् | .... ,, |
| गृहारंभे पंचांगशुद्धिः लग्नशुद्धिश्च .... | .... ,, | अथ गृहप्रवेशप्रकरणम् १३ । | |
| देवालये गृहारंभे जलाशये च विदिगवस्थितं राहुमुखानुसारेण फलम् | .... ३११ | तत्र प्रवेशश्चतुर्विधः तेषां लक्षणानि च | .... ३१७ |
| गृहे कूपनिर्माणदिगवस्थित्या फलम् .... | .... ३१२ | गृहप्रवेशकालाः .... | .... ,, |
| उपकरणगृहाणां दिक्परत्वेन फलम् .... | .... ,, | जीर्णगृहप्रवेशे विशेषः | .... ३१८ |
| गृहस्य आयुर्दाययोगद्वयम्.... | ,, | गृहप्रवेशदिनात् प्राग्वास्तुपूजाकालादयः | .... ३२० |
| अन्ययोगत्रयम्.... | .... ३१४ | लग्नशुद्धिस्तिथिवारशुद्धिश्च.... | ३२२ |
| गृहस्य परहस्तगामित्वयोगः. | ,, | वामरविः पूर्वादिमुखप्रवेशश्च. | ३२३ |
| फलविशेषाच्छुभसूचकं योगद्वयम् .... | .... ३१५ | प्रवेशकलशवास्तुचक्रम् | .... ३२४ |
| अन्ययोगद्वयं अशुभम् | .... ,, | प्रवेशोत्तरकालीनकर्तव्यविधिः. | ३२५ |
| | | ग्रंथसमाप्तौ ग्रंथकर्तृपितामहवर्णनम् .... | .... ३२६ |
| | | ग्रंथकर्तृपितृवर्णनम् | .... ,, |
| | | स्वनामकथनपूर्वकं ग्रंथसमाप्तिः. | ३२७ |


इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

---


पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास.

" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " छापाखाना—कल्याण मुंबई.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

प्रमिताक्षराटीकासमेतः

# मुहूर्तचिंतामणिः ।

## अथ शुभाशुभप्रकरणम् १ ।

गौरीश्रवःकेतकपत्रभंगमाकृष्य हस्तेन ददन्मुखाग्रे ॥
विघ्नं मुहूर्ताकलितद्वितीयदन्तप्ररोहो हरतु द्विपास्यः १॥

कैलासे पूर्णराकाहिमकररुचिरे वीक्ष्य बिंबं स्वकीयं
भूयो भूयोऽपि धावन्प्रतिभटकरटिस्पर्धया चंडशुंडः ॥
मा धाव त्वं त्वदंघ्रिप्रहतिभिरभितो धूयतेऽसौ धरित्री-
त्यंबावाग्भिर्निरुद्धाः कपटकरटिनः केलयो नः पुनंतु ॥ १ ॥
मुहूर्तचिंतामणिसंज्ञकस्य स्वयं कृतस्य प्रमिताक्षराख्याम् ॥
रामो विधत्ते विवृतिं प्रणम्य विष्ण्वर्करुद्रान् पितरौ गुरूंश्च ॥२॥

प्रारीप्सितस्य ग्रंथस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं शिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधितकर्तव्यताकं स्वाभीष्टगणेशदेवताशीर्वादरूपं मंगलमिंद्रवज्रयोपनिबध्नाति—गौरीश्रव इति ॥ द्विपस्य गजस्यास्यं मुखं यस्येति द्विपास्यो गणेशो विघ्नं हरतु नाशयतु । युष्माकमिति शेषः । कीदृशो गणेशः गौरीश्रवःकेतकपत्रभंगं हस्तेनाकृष्य मुखाग्रे ददत् । गौरी पार्वती तस्याः श्रवसोः कर्णयोः स्थितं केतक्याः पुष्पं केतकं तस्य पत्रं पर्णं तस्य भंगं खंडं हस्तेन शुंडादंडेनाकृष्य हठाद्गृहीत्वा स्वमुखाग्रे स्वमुखौष्ठे ददाति स्थापयतीति ददत् । अनेन गणेशस्य बाललीला सूचिता । बालोऽपि मातृसमीपवर्ति यत्किंचित्स्वेष्टं वस्तु बलात्कारेण गृहीत्वा मुखे निक्षिपतीति । अत एव मुहूर्ताकलितद्वितीयदंतप्ररोहः मुहूर्तं क्षणमात्रमाकलितोऽनुसृतो द्वितीयदंतप्ररोहो

द्वितीयदंतोद्गमो येन सः। अनेन केतकपत्रस्य मुखस्थापनसमये यावन्निगरणं न करोति तावद्गणेशोऽपि द्विदंत एवालोकि। लोकै-रित्यभूतोपमेयम् ॥ १ ॥

अथ ज्यौतिषग्रंथमारभमाणो विषयप्रयोजनसंबंधाधिकारिणः सूचयन्कर्तव्यमुपजातिकया प्रतिजानीते—

**क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतुं संक्षिप्तसारार्थविलासगर्भम् ॥**
**अनंतदैवज्ञसुतः स रामो मुहूर्तचिंतामणिमातनोति ॥२॥**

क्रियाकलापेति ॥ अनंताख्यज्योतिर्वित्पुत्रः स प्रसिद्धो रामो मुहूर्तचिंतामणिं मुहूर्तानां दिनशुद्धिविशेषाणामथवा दिनस्य रात्रेर्वा पंचदशो विभागस्तत्र लक्षणया तदुपलक्षितः कालो मुहूर्तशब्देनो-च्यते तस्य चिंता शुद्ध्यशुद्धिरूपो विचारस्तस्य मणिरिव मुहूर्तचिं-तामणिः। यथा मणिर्हीरकादिः समस्तकांतीनामाधारस्तथाऽयमपि ग्रंथो निखिलमुहूर्तानामाधार इत्यन्वर्थनामानं मुहूर्तचिंतामणिं ज्यौति-षग्रंथमातनोति। निषेधविध्यादिसन्निवेशविशेषेण निरूपयतीत्यर्थः। ननु जीर्णग्रंथैरेव मुहूर्तविचारे सिद्धे किमनेनेत्यत आह। कीदृशं मुहूर्तचिंतामणिं क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतुं क्रिया जातकर्मादिकास्तासां कलापः समूहस्तस्यामुकस्मिन् शुभदिने कार्यमेतदस्मिन्नशुभदिने न कार्यमित्येवं रूपा द्रुततरं प्रतिपत्तिः सम्यग्ज्ञानं तस्य हेतुं कार-णम्। अयमर्थः। अन्यग्रंथेषु तिथ्यादिप्रकरणेषु तिथ्यादिशुद्धि-रुक्ता। तज्ज्ञानं तत्प्रकरणानां पुनः पुनरालोडनेन सिध्येदिति गौर-वम्। अत्र त्वेकस्मिन्नेव पद्ये यो यो मुहूर्तो विचार्यते तस्य तस्य तत्रैव निर्वाह इति लाघवम्। नन्वन्येष्वपि ग्रंथेष्वेवंविधमुहूर्तनिरूप-णाद्व्यर्थोऽयं श्रम इत्यत आह। पुनः कीदृशं मुहूर्तचिंतामणिं संक्षि-प्तसारार्थविलासगर्भं संक्षिप्तश्चासौ सारार्थविलासगर्भश्च तं सारार्थो निष्कृष्टार्थस्तस्य विलासः प्रकाशः स गर्भे यस्यासौ। अत्र शब्द-लाघवेन निष्कृष्टार्थस्य निरूपणात्। यथा गुरुमुखं विनैवार्थज्ञानं सद्यो मनसि जागर्ति तथा नान्यग्रंथेषु तत्र शब्दकाठिन्याद्गुरुमुखा-

दपि झटित्यर्थज्ञानं न भवतीत्येतदर्थमस्यारंभ इति । ननु संबंधादिचतुष्टयकथनं विना कथं श्रोतृप्रवृत्तिः । उक्तं च । "सिद्धिः श्रोतृप्रवृत्तीनां संबंधकथनाद्यतः । तस्मात्सर्वेषु शास्त्रेषु संबंधः पूर्वमुच्यते ॥ किमेवात्राभिधेयं स्यादिति पृष्टस्तु केनचित् ॥ यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते ॥" इति । उच्यते । मुहूर्तचिंतामणिमित्यनेन पदेनैव सर्वं सूचितम् । तथा च नारदः । "अस्य शास्त्रस्य संबंधो वेदांगमिति धातृतः" इति । यद्वा । अत्राभिधेयपदार्थानां मुहूर्तानां ग्रंथस्य च प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावः संबंधः । प्रयोजनं तु शुभाशुभनिरूपणं विवाहादिकालनिर्णयश्च । यदाह नारदः । "प्रयोजनं च जगतः शुभाशुभनिरूपणम्" इति । कश्यपोऽपि । "ग्रहणग्रहसंक्रांतियज्ञाध्ययनकर्मणाम् । प्रयोजनं व्रतोद्वाहक्रियाणां कालनिर्णयः ॥" इति । तज्जिज्ञासुरधिकारी स च द्विज एव नान्यः । उक्तं च नारदेन । "सिद्धांतसंहिताहोरारूपस्कंधत्रयात्मकम् । वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमकल्मषम् ॥ विनैतदखिलं श्रौतस्मार्तकर्म न सिद्ध्यति । तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ अतएव द्विजैरेतदध्येतव्यं प्रयत्नतः ।" अत्रैवकारस्य पाठक्रमेण योजने प्रयोजनं विनैव ज्योतिःशास्त्राध्ययनस्यावश्यकत्वं प्रतीयते । द्विजैरेवेति व्याख्याने द्विजव्यतिरिक्तैः शूद्रैर्नाध्येयमिति च प्रतीयते । व्याख्यानद्वयमपि युक्तमेव । ननु कथं श्रौतस्मार्तकर्मोपयोगि ज्यौतिषमिति चेदुच्यते । "अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत । वसंते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत । दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेत" इत्यादिश्रुतयः संति । तत्र वर्षादिज्ञानं वसंताद्यृतुज्ञानं दर्शपूर्णमासयोर्ज्ञानं च ज्यौतिषं विना सर्वथा न निर्वहतीत्यवश्यमध्येतव्यं ज्योतिःशास्त्रम् । उक्तं च वेदांगज्यौतिषे । "वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः । तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान् ॥ यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा । तद्वद्वेदांगशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम् ॥" तस्मात्कर्मोपयोगितयाऽवश्यमध्येतव्यं ज्योतिःशास्त्रम् । तच्च सुपरीक्षितशिष्याय

देयम् । तदुक्तं श्रुतौ " विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि । असूयकायानृजवे यताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ॥ " अन्यच्च । " नैतद्देयं दुर्विनीताय जातु ज्ञानं गुप्तं तद्धि सम्यक् फलाय । अस्थाने हि स्थाप्यमानैव वाचां देवी कोपान्निर्देहेत्तं चिराय ॥ विनयावनताय दीयमानं प्रभवेत्कल्पलतेव सत्फलाय । उपकृत्यनुचितकानि शास्त्राण्युपकारस्य पदं हि साधुरेव ॥ " इति । शूद्रपाठे च महान् दोषः । गर्गः । " स्नेहाल्लोभाच्च मोहाच्च यो विप्रोऽज्ञानतोऽपि वा । शूद्राणामुपदेशं तु दद्यात्स नरकं व्रजेत् ॥ " इति । ज्योतिःशास्त्राध्ययने फलमाह मांडव्यः । " एवंविधस्य श्रुतिनेत्रशास्त्रस्वरूपभर्तुः खलु दर्शनं वै । निहंत्यशेषं कलुषं जनानां षडब्दजं धर्मसुखास्पदं स्यात् ॥ " अत्र ज्ञानविशेषेण ज्योतिर्विदः पूज्यतातारतम्यं जीर्णैरभ्यधायि । " दशदिनकृतपापं हंति सिद्धांतवेत्ता त्रिदिनजनितदोषं तंत्रविज्ज्ञः स एव । करणभगणवेत्ता हंत्यहोरात्रदोषं जनयति घनमंहस्तत्र नक्षत्रसूची ॥ " नक्षत्रसूचिलक्षणं वराहसंहितायाम् । " अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते । स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ॥ तिथ्युत्पत्तिं न जानंति ग्रहाणां नैव साधनम् । परवाक्येन वर्तते ते वै नक्षत्रसूचकाः ॥ " नक्षत्रं सूचयतीति नक्षत्रसूची । " नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति यः । स व्रजत्यन्धतामिस्रं सार्धमृक्षविडंबिना ॥ नक्षत्रसूचकं पापं भिषजं शुल्कजीविनम् । तादृक्पौराणिकादींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ " ऋक्षविडंबिना नक्षत्रसूचकेन सहांधतामिस्रं नरकं व्रजति । अतश्चायथाशास्त्रमादेशक एव नक्षत्रसूचको न तु संपूर्णशास्त्रपरिज्ञाता । दैवज्ञत्वं प्रपद्यत इत्युक्तत्वात् । पूर्वकर्मार्जितसदसत्कर्मविपाको दैवं तज्जानातीति दैवज्ञस्तस्य भावे दैवज्ञत्वम् । गुरुः " दैवज्ञः शास्त्रतत्त्वज्ञैर्मुहूर्तोऽन्विष्यते यदि । सन्मुहूर्तः समन्वेष्यो नान्यैर्नक्षत्रसूचकैः ॥ " इति । अत एव कश्यपो वेदपारगसाहित्येनैव नक्षत्रसूचकस्य श्राद्धभोजनमाह-" अरिर्विश्रंभहंता च व्यंगो नक्षत्रसूचकः । काणः कुब्जश्च मंदश्च श्वित्री मूर्खश्च कुष्ठवान् ॥

सर्वे श्राद्धे नियोक्तव्या मिश्रिता वेदपारगैः ॥" इति। वसिष्ठः "त्रिस्कंधपारंगम एव पूज्यः श्राद्धे सदा भूसुरवृंदमध्ये। नक्षत्रसूची खलु पापरूपो हेयः सदा सर्वसुधर्मकृत्ये ॥" वराहोऽपि। "नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता। चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते ॥ मुहूर्त्ततिथिनक्षत्रमृतवश्चायनानि च। सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात्सांवत्सरो यदि ॥" अतो गणकानां यदपांक्तेयत्वमभ्यधायि धर्मशास्त्रे तच्च नक्षत्रसूचकाभिप्रायेण ज्ञेयम्। महाप्रयोजनं त्वेतच्छास्त्रस्य सम्यग्ज्ञानाद्ब्रह्मसायुज्यमिति। तथा च गर्गः। "ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम्। ज्योतिर्ज्ञानं तु यो वेद स याति परमां गतिम् ॥" सूर्यसिद्धांते। "दिव्यं चक्षुर्ग्रहाणां तु दर्शितं ज्ञानमुत्तमम्। विज्ञायार्कादिलोकेषु स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥" वराहः। "न सांवत्सरपाठी च नरके परिपच्यते। ब्रह्मलोकप्रतिष्ठां च लभते दैवचिंतक ॥" इति। तस्माज्ज्योतिःशास्त्रमवश्यमध्येतव्यमिति स्थितम्। तत्राप्यार्षवाक्यानां पाठमात्रेणापि फलमस्ति स्मृत्यादिपठनवदिति। अथ मुहूर्तप्रयोजनमाह सत्याचार्यः। "शुभक्षणक्रियारंभजनितापूर्वसंभवाः। संपदः सर्वलोकानां ज्योतिस्तत्र प्रयोजनम्" इति। तेन शुभमुहूर्तारब्धं कार्यं सिद्ध्येदशुभमुहूर्तारब्धं तु न सिद्ध्येदिति। नन्वेतन्न युज्यते। "येन तु यत्प्राप्तव्यं तस्य विपाकं सुरेशसचिवोऽपि। यः साक्षान्नियतिज्ञः सोऽपि न शक्तोऽन्यथा कर्तुम् ॥" इति शौनकोक्तेः प्राचीनसदसत्कर्मरूपदैवस्यावश्यंभावित्वादिति चेन्न। विवाहादिषु विहितकालस्य पुरुषप्रयत्नसाध्यत्वादुभययोगे सत्येव कार्यसिद्धिर्न केवलदैवेनेति। तदुक्तं केशवार्किणा। "फलेद्यदि प्राक्तनमेव तर्त्कि कृष्याद्युपायेषु परः प्रयत्नः। श्रुतिः स्मृतिश्चापि नृणां निषेधविध्यात्मके कर्मणि किं निषण्णा ॥" इति। यदि तु दैवमेव फलेत्तदा सर्वो जनः कृष्याद्युपायेषु कथं प्रवर्त्तेतेति। किं च श्रुतिस्मृत्यादयोऽपि निषेधविध्यात्मका निरर्थकाः स्युः। "न वृक्षमारोहेन्न कूपमवरोहेन्न बाहुभ्यां नदीं

तरेण संशयमभ्यापद्येत " इत्यादीनामाश्वलायनादिवचनानां चिकित्साशास्त्रस्य च वैयर्थ्यप्रसंगः स्यादित्यर्थः । याज्ञवल्क्योऽपि । " दैवे पुरुषकारेऽपि कर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता । तत्र दैवमभिव्यक्तं पौरुषं पौर्वदैहिकम् ॥ " इति । कर्मसिद्धिः फलावाप्तिरिष्टानिष्टलक्षणा । सा च केवलदैवे न व्यवस्थिता अपि तु पुरुषकारेऽपि । पुरुषकारः प्रयत्नः । पुरुषकाराभावे दैवमेव नास्तीत्याह । तत्र दैवामिति । पूर्वदेहार्जितपौरुषमेव दैवमित्युच्यते । तच्चाल्पपुरुषप्रयत्नानंतरं महाफलोदयेनाभिव्यक्तं भवति । अत एव वसंतराजः । " पूर्वजन्मजनितं पुराविदः कर्म दैवमिति संप्रचक्षते । उद्यमेन समुपार्जितं तदा वांछितं फलति नैव केवलम् ॥ " इति । दैवप्रयत्नयोरन्यतरेण सिद्धिर्न भवतीत्यत्र दृष्टांतमाह याज्ञवल्क्यः । " यथा ह्येकेन चक्रेण रथस्य न गतिर्भवेत् । तद्वत्पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति ॥ " केशवार्कोऽपि । " प्राक्कर्मबीजं सलिलानलोर्वीसंस्कारवत्कर्म विधीयमानम् । शोषाय पोषाय च यस्य तस्य तस्मात्सदाचारवतां न हानिः ॥ " इति । यत्प्राक्कर्म जन्मांतरोपार्जितं कर्म दैवरूपं तस्य विधीयमानमधुना क्रियमाणं कर्म शोषाय पोषाय च भवति । बीजसलिलानलोर्वीसंस्कारवत् । यथा सद्बीजं शुभसलिलादिसंस्कारैः संस्कृतं सदुदेति वर्धते च तद्वत्प्राक्कर्माप्यैहिकेन सत्प्रयत्नेन वर्धतेऽन्यथा क्षीयत इत्यर्थः । तस्माज्ज्योतिःशास्त्रविहितकाले विवाहादिकुर्वतां शांतिचिकित्सादिसदाचारवतां पुरुषाणां सदा न हानिः स्यात् । अन्यच्च । दैवं हि पुरुषनिष्ठं तद्देशकालवशत एव विपच्यते । दुष्टमपि दुष्टांतरसाहित्येनैतद्दुष्टकारि भवति । यथा दुर्जनो रंध्रान्वेषणेन । अत एव वसंतराजः । " सर्पवह्निविषकंटकादिकं येन दैवशरणोऽपि मानवः । दूरतस्त्यजति पौरुषं तदा तेन न स्फुरति दैवतोऽधिकम् ॥ पौरुषेण हृदयेप्सितां गतिं प्राप्नुवंति पुरुषाः सुमेधसः । यांति दैवशरणालयं यथा पादपो ज्वलति दावपावके ॥ " इति । शकुननिमित्तादिभिः सूचितमशुभं दैवफलं शुभेन प्रयत्नेन वंच्यत एव । तथा च

वसंतराजः। " तन्निरूप्य शकुनेन दुःखदं वंचयंति नियतं समुद्यतम्। पौरुषेण पुरुषाः सुमेधसः संश्रयंति पुनरात्मनो हितम् ॥ " इति। तद्दैवफलं दुःखं समुद्यतं शकुनेन निरूप्य ज्ञातारः पुरुषाः पौरुषेण वंचयंतीत्यर्थः। यथा येन ग्रहेण यावती दशांऽतर्दशा वा दत्ता तस्याः फलपरिपाकस्तावंतं कालमभिव्याप्य भवेदेवेति स्थिते दशाप्रवेशकालीनचंद्राद्यच्छुभाशुभफलनिरूपणं यथा तस्य दशाफलस्यान्यथात्वमल्पत्वमाधिक्यं वा रुंधयति तद्वदेतदपि बोद्धव्यम्। नन्वनंतरोक्तसर्पविषवैद्यादिदृष्टांतेन पौरुषमेव फलसाधनं कथं न स्यात्। तथा च बृहद्यात्रायां वराहः। " तथा परमुपेक्ष्यैव दैवं धैर्यावलंबिनः। प्रत्यक्षतः क्रियासिद्धौ केवलं जगुरुद्यमम् ॥ उत्थानहीनो राजा हि बुद्धिमानपि सर्वदा। प्रधर्षणीयः शत्रूणां भुजंग इव निर्विषः ॥ विधानगणनाजडः पुरुषकारमुक्तादरो मनोरथपरिश्रमैर्न परिचुंबति श्रीमुखम्। पराक्रमविनिश्चितैकसुनयो हि सद्यः कृतं हरिर्मदसुवासितं पिबति कुंजरासृङ्मधु ॥" इत्यादि। उच्यते। समानभूमिषु समानसलिलादिप्रयत्नेऽपि फलवैचित्र्यदर्शनात् कारणांतरं कल्प्यते तदेव दैवमिति। अत उभयोर्योगे सत्येव फलसिद्धिरिति। एतदपि तत्रैव। "कृषिवृष्टिसमायोगाद्दृश्यंते फलसिद्धयः। अस्मिन्नर्थे शृणु श्लोकान्द्वैपायनमुखोद्गतान् ॥ " कृषिः पौरुषं वृष्टिर्दैवं कर्षकः पौरुषेण कृषिं करोति तां दैवं वृष्ट्या साधयति। अथ कृषिं करोति चेत्तदा वृष्ट्या विना न किंचित्फलमाप्नोति। यदि पुनः कर्षको बीजं वर्षति देवं च वर्षति तदा फलमधिकमुत्पद्यते। एवं दैवपुरुषकारयोः समयोर्यत्फलसिद्धयो दृश्यंते। अत्रार्थे श्रीव्यासमुखोद्गता इमे श्लोकाः। " न विना मानुषं दैवाद्दैवं वा मानुषाद्विना। नैको निवर्तयत्यर्थमेकारणिरिवानलम् ॥ " इति केचिद्बुद्धिः कर्मानुसारिणीति मन्यमानाः प्रयत्नोऽपि दैवरूप इति कृत्वा दैवमेव फलसिद्धेः कारणमिति वदंति तन्न अनवस्थादोषप्रसंगात्। तथा हि। प्राक्कर्मार्जितपौरुषमेव किल दैवशब्देनोच्यते।

अत्रत्यः प्रयत्नः प्राचीनपौरुषलक्षणेन दैवेन जन्यते तदपि तत्प्राचीनपौरुषजन्यमित्यनवस्थाऽतः प्रयत्नोऽपि दैवप्रेरित इत्यनुपपन्नम्। ननु बीजांकुरन्यायेनानवस्थादोषो न भवतीति चेन्न। न हि बीजांकुरन्यायेन दैवमेव मूलमिति निश्चीयते नापि प्रयत्नः। अतः सत्युभययोगे फलसिद्धिरिति तत्त्वम्। एवं चेत्तर्हि पूर्वोक्तानां शौनकादिवाक्यानां "येन तु यत्प्राप्तव्यं तस्य विपाकं सुरेशसचिवोऽपि। यः साक्षान्नियतिज्ञः सोऽपि न शक्तोऽन्यथा कर्त्तुम्॥" इत्यादिकानां का गतिः। उच्यते। दैवं तु दृढकर्मजमदृढकर्मजं चेति द्विविधम्। तत्र दृढकर्मजस्यावश्यंभावित्वात् ग्रहशांत्यादिरूपापूर्वप्रयत्नादपि तन्निवारयितुं न शक्यते दृढमूलत्वात्प्रबलवाताघातेऽपि दृढमूलपादपवत्। अदृढकर्मजं तु दैवं प्रयत्नेन निवर्त्यमतिशिथिलमूलपादपवत्। तथा च जातके। "ये धर्मकर्मनिरता विजितेंद्रिया ये ये पथ्यभोजनजुषो द्विजदेवभक्ताः। लोके नरा दधति ये कुलशीललीलां तेषामिदं कथितमायुरुदारधीभिः॥" इति। प्रयत्नाभावे तु विपच्यंते तथा च तत्रैव। "पापिष्ठा ये दुराचारा देवब्राह्मणनिंदकाः। अपथ्यभोजिनस्तेषामकाले मरणं ध्रुवम्"॥ इति। वैद्यकेऽपि। "पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते" इति। सर्वव्याधीनां साधारण्येन कर्मजत्वेऽपि साध्यत्वेन द्वैविध्यम्। तत्रापि "कृच्छ्रोपायः सुखोपायो द्विविधः साध्य उच्यते। असाध्यो द्विविधो ज्ञेयोऽसाध्यो यश्चाप्रतिक्रियः॥ साध्या याप्यत्वमायांति याप्याश्चासाध्यतां तथा। घ्नंति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावताम्॥" इत्यादिनाऽचिकित्स्यव्याधेर्दृढकर्ममूलत्वमन्येषामदृढकर्ममूलत्वं निश्चीयते ततो दैवस्येदृशं द्वैविध्यमस्ति। अतः शौनकवाक्यानामयमर्थः। येन त्विति। येन पुरुषेण यत्प्राप्तव्यमवश्यं भोक्तव्यं दृढकर्मोपार्जितमिति यावत् तदन्यथा कर्त्तुं बृहस्पतिरपि न शक्तः अर्थादन्यददृढकर्मोपार्जितमन्यथा कर्त्तुं शक्त इत्यर्थः। अतो निमित्तशकुनादिभिर्दुष्टफले ज्ञाते बोधायनादिविहितेन तच्छांतिदानादिरूपधर्मेण प्रयत्नेन तन्निवर्तते शुभं

वर्धते । अत एव तेनैवोक्तम् । " सुपरीक्षितं विलग्नं धर्मार्थसुखाय दंपत्योः । अपरीक्षितं विलग्नं न हि देयं पंडितेन दैवविदा ॥ अयशोऽम्बुनिधौ मज्जति शास्त्रमविज्ञाय यो दद्यात् । " इति । बृहस्पतिरपीदं प्रत्याह । "स्वभावादेव कालोऽयं शुभाशुभसमन्वितः । अनादिनिधनः सर्वो न निर्दोषो न निर्गुणः ॥ तस्मान्निर्दोषकालार्थे मुहूर्तमधिगच्छताम् । कालः शुभो गुणैर्युक्तो बलवद्भिः शुभप्रदः ॥ दोषैर्युक्तोऽपि चाप्राप्यैर्बहुभिर्व्यत्ययं द्वयोः ।" इति । अतः शुभमुहूर्तबलेन पूर्वकर्मार्जितमशुभमपि दैवफलं निवार्यते इत्यनवद्यम् ॥२॥

अथ तिथीशाननुष्टुभाह—

तिथिशा वह्निकौ गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः ॥
शिवो दुर्गांतको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी ॥३॥

तिथीशा इति ॥ एते तिथीशास्तिथीनां स्वामिनः वह्निश्च कश्च को ब्रह्मा शेषं स्पष्टम् । प्रयोजनं तु तत्तद्देवतापूजाप्रतिष्ठादि । अथ मुहूर्तविचारस्य प्रतिज्ञातत्वात्संवत्सरप्रकरणं नोक्तं तदन्यत एवावधार्यम् ॥ ३ ॥

अथ तिथीनां संज्ञां सफलामाह—

नंदा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्योऽ-
शुभमध्यशस्ताः ॥ सितेऽसिते शस्तसमाधमाः
स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः ॥ ४ ॥

नंदेति ॥ प्रतिपदादिपंच तिथयो नंदाभद्राजयारिक्तापूर्णासंज्ञाः स्वस्वनामसदृशफलदाः स्युरिति । एवं प्रकारेण सर्वाः षष्ठ्यादयो ज्ञेयाः । ताः शुक्लपक्षे अशुभमध्यशुभफलदाः स्युः । असिते कृष्णपक्षे शुभमध्याधमफलदाः स्युः । ता एव नंदादितिथयः शुक्रबुधमंगलशनिगुरुवारेषु सिद्धिकराः स्युः । यथा नंदा शुक्रवारे एवं भद्रा बुधवारे जया भौमे रिक्ता शनौ पूर्णा गुराविति ॥ ४ ॥

अथ सूर्यादिवारेषु यथासंख्यं निषिद्धतिथीर्दग्धनक्षत्राणि च शालिन्याऽऽह—

**नंदा भद्रा नंदिकाख्या जया च रिक्ता भद्रा चैव पूर्णसंज्ञाऽधमाऽर्कात् ॥ याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवं धनिष्ठार्यम्णं ज्येष्ठांत्यं रवेर्दग्धभं स्यात् ॥ ५ ॥**

नंदेति ॥ अर्कादिति ल्यब्लोपे पंचमी । अर्कमारभ्य नंदादिका तिथिरधमा स्यात् । यथा सूर्यवारे नंदाधमा एवं सोमे भद्रा भौमे नंदा बुधे जया गुरौ रिक्ता शुक्रे भद्रा शनौ पूर्णेति । इदमाधुनिकानां प्राच्यानां मतम् । वस्तुतस्तु ते शुभा अमृतयोगाः । तथा च वसिष्ठः । "नंदा भौमार्कयोर्भद्रा शुक्रेंद्वोश्च जया बुधे । शुभयोगा गुरौ रिक्ता पूर्णा मंदेऽमृताह्वया ॥" गुरुरपि । "आदित्यभौमयोर्नंदा भद्रा शुक्रशशांकयोः । जया ज्ञे च गुरौ रिक्ता पूर्णार्कौ चामृता शुभा" ॥ इति नारदवाक्ये "शनौ पूर्णा च मृत्युदा" इति कल्पितः पाठः वसिष्ठादिवचनविसंवादात् । बहुषु पुस्तकेषु शनौ पूर्णाऽमृता शुभेति पाठाच्च । पूर्णसंज्ञाऽमृतार्कादिति पाठः साधुः । तथा रविवारादिषु याम्यं भरणी तदादीनि नक्षत्राणि यथाक्रमेण दग्धनक्षत्राणि स्युः । यथा रविवारे भरणी दग्धा सोमे चित्रा भौमे उत्तराषाढा बुधे धनिष्ठा गुरावुत्तराफाल्गुनी शुक्रे ज्येष्ठा शनौ रेवती । नारदः । " आदित्यभौमयोर्नंदा भद्रा शुक्रशशांकयोः । जया सौम्ये गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णाऽमृता शुभा ॥ " इति । नारदः । " यमर्क्षमर्कवारेऽब्जे चित्रा भौमे तु विश्वभम् । बुधे श्रविष्ठार्यम्णर्क्षं गुरौ ज्येष्ठा भृगोर्दिने ॥ रेवती शनिवारे तु दग्धयोगा भवंत्यमी । " एतान्येव नक्षत्राणि रव्यादीनां जन्मभानीत्युक्तानि तान्यपि निषिद्धान्येव । लल्लः । " याम्यं त्वाष्ट्रोत्तराषाढे धनिष्ठोत्तरफाल्गुनी । ज्येष्ठा च रेवती चैव जन्मर्क्षं भानुतः क्रमात् ॥ क्रमात्सप्तेंद्रदिक्सूर्यनवाष्टौ पौर्णमास्यमा ( ७ । १४ । १० । १२ । ९ । ८ । १५ । ३० ) । सूर्यादिजन्मातिथयः संत्याज्याः शुभकर्मणि ॥ जन्मर्क्षे जन्म-

तिथिषु शुभकर्म विवर्जयेत् । बलाच्चेत्कुरुते कर्म न तत्फलमवाप्नुयात् ॥" इति ॥ ५ ॥

अथ च क्रकचादिनिंद्ययोगाननुष्टुभाह—

**षष्ठ्यादितिथयो मंदाद्विलोमं प्रतिपद्बुधे ॥**
**सप्तम्यर्केऽधमा षष्ठ्याद्यामाश्च रदधावने ॥ ६ ॥**

षष्ठ्यादीति ॥ क्रमेण षष्ठ्यादितिथयः मंदाच्छनैश्चराद्विलोमं विपरीतगणनयाऽधमाः स्युः । यथा शनौ षष्ठी अधमा शुक्रे सप्तमी गुरावष्टमी बुधे नवमी भौमे दशमी सोमे एकादशी रवौ द्वादशी एते योगाः क्रकचाख्या ज्ञेयाः । तथा प्रतिपद्बुधवासरे सप्तमी रविवारे संवर्तयोगा अधमा स्यात् । अथ षष्ठी आद्या प्रतिपत् अमा अमावास्या रदधावने दंतानां काष्ठादिभिर्मलनिराकरणेऽधमा निषिद्धाः स्युः । क्वचिन्नवमीरविवारयोरपि निषेधः । काशीखंडे । "प्रतिपद्दशमी षष्ठी नवम्यां रविवासरे । दंतानां काष्ठसंयोगो दहेदासप्तमं कुलम् ॥" इति ॥ ६ ॥

अथ कृत्यविशेषे निषिद्धतिथीरिंद्रवंशाच्छंदसाऽऽह—

**षष्ठ्यष्टमीभूतविधुक्षयेषु सेवेत नो तैलपले क्षुरं रतम् ॥ नाभ्यंजनं विश्वदशद्विके तिथौ धात्रीफलैः स्नानममाद्रिगोष्वसत् ॥ ७ ॥**

षष्ठीति ॥ षष्ठ्यष्टम्यौ प्रसिद्धे भूतश्चतुर्दशी विधुक्षयोऽमावास्या एतासु तिथिषु ना पुरुषः तैलं पलं मांसं क्षुरं क्षौरं रतं मैथुनं नो सेवेत । यथा षष्ठ्यां तैलम् अष्टम्यां मांसं चतुर्दश्यां क्षौरम् अमावास्यायां मैथुनं न सेवेतेत्यर्थः । विधुक्षयः पर्वोपलक्षकः । वसिष्ठः । "स्त्रीसेवनं पर्वसु पक्षमध्ये पलं च षष्ठीषु च सर्वतैलम् । नृणां विनाशाय चतुर्दशीषु क्षुरक्रिया स्यादसकृत्तदाशु ॥" नारदः । "व्यतीपाते च संक्रांतावेकादश्यां च पर्वसु । अर्कभौमदिने षष्ठ्यां नाभ्यङ्गं न च वैधृतौ ॥" इति । पर्वाणि वसिष्ठ आह । "चतुर्द-

ऽयष्टमी कृष्णा अमावास्या च पूर्णिमा । पुण्यानि पंच पर्वाणि संक्रांतिर्दिनपस्य च ॥ " इति । अत्र तिथिस्तात्कालिकी ग्राह्या । उक्तं च । " स्नाने चाभ्यंजने चैव दंतधावनमैथुने । तिथिस्तात्कालिकी ग्राह्या तथा मरणजन्मनोः ॥ " इति । अथ विश्वे त्रयोदशी दश दशमी द्विके द्वितीया एतासु तिथिषु अभ्यंजनमभ्यंगं मलापहारार्थं न सेवेत । अयं निषेधो ब्राह्मणव्यतिरिक्तस्य । तथा च भट्टभास्करो निर्णयामृते । " त्रयोदश्यां द्वितीयायां सप्तम्यां च विशेषतः । शूद्रविट्क्षत्रियाः स्नानं नाचरेयुः कदाचन ॥ " इति । अथ धात्रीफलैरामलकैः स्नानममाद्रिगोषु अमावास्यासप्तमीनवमीषु असत् निषिद्धमित्यर्थः । अत्र वसिष्ठादिमते त्रयोदश्यादितिथिष्वामलकस्नानस्यैव निषेधो नाभ्यंगस्य । वसिष्ठः । " कामदुगंतकरविनष्टेंद्वर्कदिनेषु च । सकृदामलकस्नानं संपत्पुत्रविनाशनम् ॥ " भट्टभास्करस्तु नवम्यादिष्वेवामलकस्नानं निषेधति । " सप्तम्यचंद्रानवमीषु देहश्रीसंततीरामलकैर्नरस्य । स्नानं निहंत्यंत्यदिने तु धत्ते तिलैः श्रियं पुण्यकरं सदैव ॥ " इति ॥ ७ ॥

अथ सूर्यादिवारेषु दग्धादियोगचतुष्टयमिंद्रवज्रोपजातिकाभ्यामाह—

**सूर्येशपंचाग्निरसाष्टनंदावेदांगसप्ताश्विगजांकशैलाः॥ सूर्यांगसप्तोरगगोदिगीशा दग्धा विषाख्याश्च हुताशनाश्च ॥ ८ ॥ सूर्यादिवारे तिथयो भवंति मघा विशाखा शिवमूलवह्नी ॥ ब्राह्मं करोऽर्काद्यमघंटकाश्च शुभे विवर्ज्या गमने त्ववश्यम् ॥ ९ ॥**

सूर्येति । सूर्यादीति ॥ सूर्येशपंचाग्निरसाष्टनंदाः तिथयः सूर्यादिवारे दग्धसंज्ञा भवंति । यथा द्वादशी रविवारे दग्धा सोमे एकादशी भौमे पंचमी बुधे तृतीया गुरौ षष्ठी शुक्रेऽष्टमी शनौ नवमी । उक्तं च नारदेन । "एकादशी चेंदुवारे द्वादशी चार्कवासरे । षष्ठी

बृहस्पतेर्वारे तृतीया बुधवासरे॥ अष्टमी शुक्रवारे च नवमी शनिवासरे। पंचमी भौमवारे च दग्धयोगाः प्रकीर्तिताः॥" अथ विषयोगाः। वेदेति। चतुर्थ्यादितिथयोऽर्कादिवारेषु विषाख्या भवंति। यथा। रवौ चतुर्थी विषाख्या चंद्रे षष्ठी भौमे सप्तमी बुधे द्वितीया बुधे भद्रारूपः। सिद्धियोगस्तु सप्तमीद्वादश्योश्चरितार्थः। एवं नवमी शन्यादावपि। गुरावष्टमी शुक्रे नवमी शनौ सप्तमी। तथा च गुरुः। "षष्ठी शशांके नवमी च शुक्रे बुधे द्वितीया तपने चतुर्थी। जीवेऽष्टमी सौरिकुजेऽह्नि सप्तमी योगा विषाख्याः कुलनाशनाः स्युः॥" अथ हुताशनाख्याः सूर्याङ्गेति। द्वादश्यादितिथयः सूर्यादितिथयः सूर्यादिवारेषु हुताशनाख्याः स्युः। यथा। रवौ द्वादशी सोमे षष्ठी भौमे सप्तमी बुधेऽष्टमी गुरौ नवमी शुक्रे दशमी शनावेकादशी। वसिष्ठः सप्तषष्ठ्यादितिथयः सोमवारादिभिर्युताः। अग्निजिह्वाः सप्तयोगा मङ्गलेष्वतिगर्हिताः॥" अथ यमघंटाः। मघाविशाखादिनक्षत्राणि रविवारादिषु यमघंटसंज्ञानि स्युः। यथा। अर्कवारे मघा यमघंटः। एवं सोमवारे विशाखा इत्यादि। गर्गः। " मघा विशाखा आर्द्रा च मूलमृक्षं च कृत्तिका। रोहिणी हस्त इत्युक्ता यमघंटाः क्रमाद्रवेः॥" एते दग्धादियोगाः शुभे विवाहादिकार्ये वर्ज्याः। गमने तु यात्रायामवश्यं वर्ज्याः एषामपवादो वसिष्ठेनोक्तः। " दिवा मृत्युप्रदाः पापदोषास्त्वेते न रात्रिषु। शुभकार्ये प्रसूतौ च सर्वदा परिवर्जयेत्॥" इति। आवश्यककृत्ये दीपिकायाम्। " यमघंटे त्यजेदष्टौ मृत्यौ द्वादश नाडिकाः।" इति। " अन्येषां पापयोगानां मध्याह्नात्परतः शुभम्।" इति॥ ८॥ ९॥

अथ चैत्रादिमासे शून्यतिथीः शार्दूलविक्रीडितेनार्द्धानुष्टुभाह—

**भाद्रे चंद्रदृशौ नभस्यनलनेत्रे माधवे द्वादशी**
**पौषे वेदशरा इषे दश शिवा मार्गेऽद्रिनागा मधौ॥**
**गोऽष्टौ चोभयपक्षगाश्च तिथयः शून्या बुधैः कीर्तिता**

**ऊर्जाषाढतपस्यशुक्रतपसां कृष्णे शरांगाब्धयः ॥१०॥**
**शक्राः पंच सिते शक्राद्र्यग्निविश्वरसाः क्रमात् ॥**

भाद्र इति । शक्रा इति च ॥ भाद्रपदादिश्लोकोक्तमासेषु चंद्रदृशौ प्रतिपद्द्वितीये इत्यादिकक्रमोक्ततिथय उभयपक्षगाः शुक्लकृष्णपक्षगताः शून्यसंज्ञका बुधैः कीर्तिताः कथिताः । यथा । भाद्रपदे प्रतिपद्द्वितीये उभयपक्षे शून्ये एवं नभसि श्रावणे उभयपक्षे तृतीयाद्वितीये शून्ये इत्यादि । अनुक्तमासानामूर्जाषाढतपस्यशुक्रतपसां कार्तिकाषाढज्येष्ठफाल्गुनमाघानां कृष्णपक्षे क्रमेण शरांगाब्धयः शक्राः पंच एतास्तिथयः शून्याः यथा । कार्तिककृष्णे पंचमी शून्या । एवमाषाढकृष्णे षष्ठी फाल्गुनकृष्णे चतुर्थी ज्येष्ठकृष्णे चतुर्दशी माघकृष्णे पंचमी । अथैषामेव कार्तिकादिमासानां शुक्लपक्षे शक्राद्यग्निविश्वरसाः क्रमाच्छून्याः । यथा । कार्तिकशुक्ले चतुर्दशी शून्या आषाढशुक्ले सप्तमी फाल्गुनशुक्ले तृतीया ज्येष्ठशुक्ले त्रयोदशी माघशुक्ले षष्ठी चेति । वसिष्ठः । "अष्टमी नवमी चैत्रे पक्षयोरुभयोरपि । माधवे द्वादशी त्याज्या पक्षयोरुभयोरपि ॥ ज्येष्ठे त्रयोदशी निंद्या सिते कृष्णे चतुर्दशी । आषाढे कृष्णपक्षस्य षष्ठी शुक्ले तु सप्तमी ॥ द्वितीया च तृतीया च श्रावणे सितकृष्णयोः । प्रथमा च द्वितीया च नभस्ये मासि निंदिते ॥ दशम्येकादशी निंद्या मासीषे शुक्लकृष्णयोः । ऊर्जे चतुर्दशी शुक्ला कृष्णपक्षे तु पंचमी ॥ सप्तमी चाष्टमी सौम्ये पक्षयोरुभयोरपि । पौषे पक्षद्वये चैव चतुर्थी पंचमी तथा ॥ माघे तु पंचमी षष्ठी शुक्ले कृष्णे यथाक्रमम् । तृतीया च चतुर्थी च फाल्गुने सितकृष्णयोः ॥ तिथयो मासशून्याख्या वंशवित्तविनाशनाः । आसु श्राद्धं प्रकुर्वीत नैव मंगलमाचरेत् ॥" इति ॥ १० ॥

अथ नक्षत्रसंबंधिदोषान्सार्धानुष्टुब्द्वयेनाह—

**तथा निंद्यं शुभे सार्पं द्वादश्यां वैश्वमादिमे ॥ ११ ॥**

अनुराधा द्वितीयायां पंचम्यां पित्र्यभं तथा ॥
त्र्युत्तराश्च तृतीयायामेकादश्यां च रोहिणी ॥ १२ ॥
स्वातीचित्रे त्रयोदश्यां सप्तम्यां हस्तराक्षसे ॥
नवम्यां कृत्तिकाष्टम्यां पूभा षष्ठ्यां च रोहिणी॥१३॥

तथेति । अनुराधेति । स्वातीति च ॥ शुभे कृत्ये द्वादश्यां सार्पमाश्लेषा निंद्या । आदिमे प्रतिपदि वैश्वमुत्तराषाढा राक्षसं मूलम् । लल्लः " द्वितीयया चानुराधा त्र्युत्तराश्च तृतीयया । पंचम्या च मघा युक्ता चित्रास्वात्योस्त्रयोदशी ॥ प्रतिपद्युत्तराषाढा नवम्यां कृत्तिका यदि । सप्तम्यां हस्तमूलं च षष्ठ्यां ब्राह्मं भवेद्यदि ॥ पूर्वाभाद्रपदाष्टम्यामेकादश्यां च रोहिणी । द्वादश्यां च यदाऽऽश्लेषा त्रयोदश्यां मघा यदि " इत्यादि । एषु कार्ये कृते चेत्स्यात्षण्मासान्मरणं ध्रुवमिति ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ चैत्रादिमासेषु शून्यनक्षत्राण्यनुष्टुब्द्वयेनाह--

कदास्रभे त्वाष्ट्रवायू विश्वेज्यौ भगवासवौ ॥
वैश्वश्रुती पाशिपौष्णे अजपादग्निपित्र्यभे ॥ १४ ॥
चित्रा द्वीशो शिवाश्व्यर्काः श्रुतिमूले यमेंद्रभे ॥
चैत्रादिमासे शून्याख्यास्तारा वित्तविनाशदाः ॥१५॥

कदास्रेति । चित्रेति ॥ कदास्रभे रोहिण्यश्विन्यौ । चैत्रे शून्ये नक्षत्रे एषु शुभकार्यं न कार्यम् । यतो वित्तविनाशदाः । धननाशकरा इत्यर्थः । एवं वैशाखे त्वाष्ट्रवायू चित्रास्वात्यौ शून्यभे । पाशी वरुणस्तद्भं शततारा । अजपात्पूर्वाभाद्रपदा । वसिष्ठः । " अश्विनीरोहिणी चैत्रे शून्यभे परिकीर्तिते । चित्रास्वाती च वैशाखे ज्येष्ठे विश्वेज्यतारके । भगवासवमाषाढे श्रावणे हरिविश्वभे । नभस्ये वारुणांत्यर्क्षमजपादाश्वयुज्यपि । कार्तिके पितृवह्न्यृक्षे सौम्ये चित्राद्विदैवते । पौषे दस्रकरार्द्राः स्युर्माघमूलं च विष्णुभम् । तपस्ये शक्र-

भरणीशून्यभान्याहुरग्रजाः । एषु यत्तु कृतं कर्म धनैः सह विनश्यति " ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ चैत्रादिमासेषु शून्यराशीननुष्टुभाह—

**घटो झषो गौर्मिथुनं मेषकन्यालितौलिनः ॥**
**धनुः कर्कौ मृगः सिंहश्चैत्रादौ शून्यराशयः ॥ १६ ॥**

घट इति ॥ वसिष्ठः । " घटमत्स्यवृषा युग्ममेषकन्याः सवृश्चिकाः । तुलाचापकुलीराख्या मृगसिंहाश्च राशयः । चैत्रादौ मासशून्याख्या वंशवित्तविनाशनाः " इति ॥ १६ ॥

अथ विषमातिथिषु दग्धलग्नानींद्रवज्रयाऽऽह—

**पक्षादितस्त्वोजतिथौ घटैणौ मृगेन्द्रनक्रौ मिथुनाङ्गने च ॥ चापेन्दुभे कर्कहरी हयान्त्यौ गोन्त्यौ च नेष्टे तिथिशून्यलग्ने ॥ १७ ॥**

पक्षादित इति ॥ शुक्लपक्षकृष्णपक्षादितः प्रतिपदमारभ्य ओजतिथौ विषमतिथौ प्रतिपत्तिथौ घटैणौ तुलामकरौ तृतीयायां मृगेंद्रनक्रौ सिंहमकरौ पंचम्यां मिथुनकन्ये सप्तम्यां चापेंदुभे धनुःकर्कौ नवम्यां कर्कहरी कर्कसिंहौ । एकादश्यां हयांत्यौ धनुर्मीनौ त्रयोदश्यां गोंत्यौ वृषमीनौ एते तिथिशून्यलग्ने तस्यां तस्यां तिथौ नेष्टे निषिद्धे । वसिष्ठः " मृगसिंहौ तृतीयायां प्रथमायां तुलामृगौ । पंचम्यां बुधराशी द्वौ सप्तम्यां चापचंद्रभे ॥ नवम्यां सिंहकीटाख्यावेकादश्यां गुरोर्गृहे । वृषमीनौ त्रयोदश्यां दग्धसंज्ञास्त्वमी ग्रहाः । दग्धसञ्ज्ञानि यत्कर्म कृतं सर्वं प्रणश्यति " ॥ १७ ॥

अथैषां दुष्टयोगानां शुभकृत्यावश्यकत्वे सति परिहारमाह नारदः—

**तिथयो मासशून्याश्च शून्यलग्नानि यान्यपि ॥**
**मध्यदेशे विवर्ज्यानि न दूष्याणीतरेषु तु ॥ १८ ॥**
**पंग्वन्धकाणलग्नानि मासशून्याश्च राशयः ॥**
**गौडमालवयोस्त्याज्या अन्यदेशे न गर्हिताः ॥ १९ ॥**

तिथयो मासशून्या इति द्वाभ्याम् ॥ पंग्वंधकाणलग्नानि विवाहप्रकरणे वक्ष्यंते । चंद्रे चैव त्रिकोणे च शुभे ह्यपचयेऽपि वा । एकोऽपि बलषांश्चापि शून्यतिथ्युडुमाशक इति ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ हस्तार्कादिसिद्धियोगानां तिथिविशेषेणातिनिंद्यत्वमनुष्टुब्द्वयेनाह—

वर्जयेत्सर्वकार्येषु हस्तार्के पंचमीतिथौ ॥
भौमाश्विनीं च सप्तम्यां षष्ठ्यां चन्द्रैन्दवं तथा ॥२०॥
बुधानुराधामष्टम्यां दशम्यां भृगुरेवतीम् ॥
नवम्यां गुरुपुष्यं चैकादश्यां शनिरोहिणीम् ॥ २१ ॥

वर्जयेदिति । बुधानुराधामिति च ॥ श्रीपतिः । "हस्ते रवौ शशधरे च मृगोत्तमांगं भौमेऽश्विनीबुधदिने च तथाऽनुराधा । पुष्यो गुरौ भृगुसुतेऽपि च पौष्ण्यधिष्ण्यं रोहिण्यथार्कतनयेऽमृतसिद्धियोगाः ।" एते पंचम्यादितिथिषु चेद्भवंति तदा वर्ज्याः । यथा । पंचम्यां हस्तार्को वर्ज्यः । एवमग्रेऽपि सप्तमीषष्ठ्यादौ । उक्तं च । अर्के हस्तः पंचमी च सोमे षष्ठी च चंद्रभम् । अश्विनी सप्तमी भौमे बुधे मैत्रं तथाष्टमी । गुरौ पुष्यं च नवमी दशमी रेवती भृगौ । एकादशी शनौ ब्राह्मं वर्जयेत्सर्वदा बुधैरिति ॥ २० ॥ २१ ॥

अन्यदप्याह—

गृहप्रवेशे यात्रायां विवाहे च यथाक्रमम् ॥
भौमाश्विनीं शनौ ब्राह्मं गुरौ पुष्यं विवर्जयेत् ॥२२॥

गृहप्रवेश इति ॥ ननु भौमाश्विन्यादीनां गृहप्रवेशादौ स्वत एव वा नक्षत्रदोषादप्राप्तेः किमर्थमिदं वचनम् । उच्यते । "यदि विष्टिर्व्यतीपातो दिनं वाऽप्यशुभं भवेत् । हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथा" इति वचनात् । कार्यमात्रे प्राशस्त्यप्राप्तेरावश्यकत्वे प्रवेशादिसंभावना स्यात्तदर्थमपवादवचनं युक्तमेव ॥ २२ ॥

अथ नंदादियोगान् शालिन्युपजातिकाभ्यामाह––

आनंदाख्यः कालदंडश्च धूम्रो धाता सौम्यो ध्वांक्षकेतू क्रमेण ॥ श्रीवत्साख्यो वज्रकं मुद्गरश्च छत्रं मित्रं मानसं पद्मलुंबौ ॥ २३ ॥ उत्पातमृत्यू किल काणसिद्धी शुभोऽमृताख्यो मुसलो गदश्च ॥ मातंगरक्षश्चरसुस्थिराख्याः प्रवर्द्धमानाः फलदाः स्वनाम्ना ॥२४॥

आनंद इति । उत्पात इति च ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथैषां गणनोपायमनुष्टुभाऽऽह––

दास्रादर्कें मृगादिन्दौ सार्पाद्भौमे कराद्बुधे ॥
मैत्राद्गुरौ भृगौ वैश्वाद्गण्या मंदे च वारुणात् ॥ २५ ॥

दास्रादिति ॥ अत्र नक्षत्राणां साभिजितां गणना कार्या यतोऽष्टाविंशतिर्योगाः । यथाऽर्कदिने दिननक्षत्रं श्रवणस्तदश्विनीतः साभिजिद्गणनया त्रयोविंशतिसंख्यमस्ति । तथा सत्यानंदादियोगेषु त्रयोविंशतिसंख्यो गदयोगो जातः । एवमिंदुवारे मृगशीर्षाद्गणनयाऽऽनंदादयो ज्ञेयाः ॥ २५ ॥

अथैतेषु कियतां दुष्टयोगानामावश्यककृत्ये परिहारं शालिन्याह––

ध्वांक्षे वज्रे मुद्गरे चेषुनाड्यो वर्ज्या वेदाः पद्मलुंबे गदेऽश्वाः ॥ धूम्रे काणे मौसले भूर्द्वयं द्वे रक्षो मृत्यूत्पातकालाश्च सर्वे ॥ २६ ॥

ध्वांक्ष इति ॥ ध्वांक्षवज्रमुद्गरयोगेषु आद्या इषुनाड्यः पंचघटिका वर्ज्याः । पद्मलुंबयोर्वेदाश्चतस्रः । एवं गदेऽश्वाः सप्त धूम्रे भूरेकैव काणे घटिकाद्वयं मुसले द्वे घटिके राक्षसमृत्यूत्पातकालाः सर्वे षष्टिघटिकात्मका वर्ज्याः । कालः कालदंडः । अत्रानुक्तेऽपि चरे योगे घटिकात्रयं वर्ज्यम् । उक्तं च ज्योतिःसागरे " ध्वांक्षेंद्रायुधमुद्गरेषु घटिकास्त्याज्यास्तु पंचादितः पद्मालुंबकयोश्चतस्र उदिता

धूम्रे सदैका पुनः। द्वे काणे मुसलाद्वयेऽपि च गदे सप्तैव तिस्रश्चरे मृत्यूत्पातकरक्षसां दिनगतास्ताः कालदंडे तथा ” ॥ २६ ॥

अथ दोषापवादभूतान्नवयोगाननुष्टुभाह—

**सूर्यभाद्वेदगोतर्कदिग्विश्वनखसंमिते ॥**
**चंद्रर्क्षे रवियोगाः स्युर्दोषसंघविनाशकाः ॥ २७ ॥**

सूर्यभादिति ॥ सूर्यो यत्र तन्नक्षत्रमारभ्य चंद्रर्क्षे दिननक्षत्रे चतुर्नवषड्दशत्रयोदशविंशतिसंख्याके सति रवियोगाः स्युस्ते च दोषसमूहानां नाशकराः। उक्तंच “ सूर्याच्चतुर्थे दशमे च षष्ठे विश्वर्क्षके विंशतिभे नवर्क्षे। भवंति षड्भानुसदृक्षयोगा कुयोगविध्वंसकराः शुभेषु ” ॥ २७ ॥

अथ सूर्यादिवारेषु नक्षत्रविशेषैः सिद्धियोगानिंद्रवज्रोपजातिकाभ्यामाह—

**सूर्येऽर्कमूलोत्तरपुष्यदास्रं चंद्रे श्रुतिब्राह्मशशीज्यमैत्रम् ॥ भौमेष्वहिर्बुध्न्यकृशानुसार्पं ज्ञे ब्राह्ममैत्रार्ककृशानुचान्द्रम् ॥ २८ ॥ जीवेऽन्त्यमैत्राश्व्यदितीज्यधिष्ण्यं शुक्रेऽन्त्यमैत्राश्व्यदितिश्रवोभम् ॥ शनौ श्रुतिब्राह्मसमीरभानि सर्वार्थसिद्ध्यै कथितानि पूर्वैः ॥ २९ ॥**

सूर्य इति। जीव इति च॥ रविवारे हस्तमूलत्र्युत्तरापुष्याश्विनीनक्षत्राणि पूर्वैराचार्यैः सर्वार्थसिद्ध्यै कथितानि। एवं चंद्रे श्रवणादीनि। एते सिद्धयोगा दास्रादर्के मृगादिंदावित्यादिप्रकारेणानंदादिसमीचीनयोगसंबंधिनक्षत्रैरुपनिबद्धाः। भीमपराक्रमेण कुयोगा अप्युक्ताः। “ ज्येष्ठावह्निमघाविशाखवसवो मैत्रं यमाख्यं रवौ सोमे शवीवशाखपुष्यपवनाश्वित्रा त्वषाढाद्वयम्। भौमे विश्वजलेशमित्रवसवः प्राग्भाद्रसार्पौ शिवः शूली रेवतिपूर्वयोनिभरणीवस्वश्विमूला

बुधे ॥ जीवे मूलमघार्द्रयाम्यवरुणाः पूषा शशी रोहिणी शुक्रे स्वातिभुजंगदैवतमघापुष्योत्तरारोहिणी । सौरावर्यममूलहस्तवरुणाषाढाद्वयं रेवतीचित्राविष्णुमघाश्च सर्वसमये त्याज्या अयोगा बुधैः" इति ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथावश्यकवर्ज्यत्वेन झटित्युपस्थित्यर्थमुत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगाञ्छालिन्याह—

**द्वीशात्तोयाद्वासवात्पौष्णभाच्च ब्राह्मात्पुष्यादर्यमर्क्षाच्चतुर्भैः ॥ स्यादुत्पातो मृत्युकाणौ च सिद्धिर्वारेऽर्काद्ये तत्फलं नाम तुल्यम् ॥ ३० ॥**

द्वीशादिति ॥ विशाखादिचतुर्नक्षत्रैरुत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगा रविवासरे स्युः । यथा रवौ विशाखा उत्पातः । अनुराधा मृत्युः । ज्येष्ठा काणः । मूलं सिद्धिरिति । एवं सोमवारादौ पूर्वाषाढादितो ज्ञेयम् । तत्फलं नामसदृशम् । उत्पातमृत्युकाणा निषिद्धाः । सिद्धिः शुभ इत्यर्थः । नारदः "विशाखादिचतुर्वर्गमर्कवारादिषु क्रमात् । उत्पातमृत्युकाणाख्ययोगाश्चामृतसंयुताः" इति ॥ ३० ॥

अथ देशविदेशविशेषेण कुयोगानां परिहारमनुष्टुभाह—

**कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्था भवारजाः ॥ हूणवंगखशेष्वेव वर्ज्यास्त्रितयजास्तथा ॥ ३१ ॥**

कुयोगा इति ॥ तिथिवारोत्थाः कुयोगाः क्रकचादयः । तिथिभोत्था अनुराधा द्वितीयायामित्यादयः । भवारजा याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवमित्यादयः । तथा त्रितयजाः तिथिवारनक्षत्रजाः । वर्जयेत्सर्वकार्येषु हस्तार्के पंचमीतिथावित्येवमादयस्ते सर्वे हूणवंगखशदेशेष्वेव वर्ज्याः । अन्यदेशे न निषिद्धा इत्यर्थः । नारदः । "तिथिवारोद्भवा नेष्टा योगा वारर्क्षसंभवाः । हूणवंगखशेभ्योऽन्यदेशेष्वेते शुभप्रदाः" इति ॥ ३१ ॥

अथ समस्तशुभकृत्यवर्ज्यान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

**सर्वस्मिन्विधुपापयुक्ततनुलवावर्धे निशाह्नोर्घटी-**
**त्र्यंशं वै कुनवांशकं ग्रहणतः पूर्वं दिनानां त्रयम् ॥**
**उत्पातग्रहतोऽद्र्यहांश्च शुभदोत्पातैश्च दुष्टं दिनं**
**षण्मासं ग्रहभिन्नभं त्यज शुभे योद्धं तथोत्पातभम् ३२**

सर्वस्मिन्निति ॥ सर्वस्मिञ्छुभे कार्ये एतानि वै निश्चयेन त्यज । परिहरेत्यर्थः । विधुना पापेन वा पापैः क्षीणेंद्वर्कमहीसुतार्कतनयैर्वा युक्तौ तनुलवौ लग्ननवांशौ त्याज्यौ । पूर्णः क्षीणोऽपि वा चंद्रो लग्ने सर्वत्र गर्हित इति कश्यपोक्तेः। पापेंदू लग्नगौ वांशगतौ वर्ज्यौ शुभे सदेति च । निशाह्नोर्द्धे रात्र्यर्धे दिनार्द्धे च घटीत्र्यंशं विंशतिपलानि दशपूर्वं दश पश्चाच्च परिहर । उक्तंच । " मूर्तः कालो निवसति महानिशायां च दिनदले यस्मात् । दश पूर्वं दश परतस्तस्माद्वर्ज्याणि च पलानि " । कुनवांशकं पापग्रहनवांशकं परिहर । अथ ग्रहणतः पूर्वं दिनानां त्रयं परिहर । उत्पातग्रहतः उत्पाता दिव्यभौमांतरिक्षास्ते यस्मिन् दिने भवंति । ततोऽद्र्यहांश्च सप्तदिनानि वर्ज्यानि । ग्रहो ग्रहणं तस्मादपि सप्तदिनानि वर्ज्यानि । उक्तं च । " चंद्रसूर्योपरागेषु त्र्यहं पूर्वं शुभे त्यजेत् । सप्ताहमशुभं पश्चात्स्मृतं ग्रहणसूतकम् । त्रिविधोत्पाततश्चोर्ध्वं सिंहिकासूनुदर्शने । सप्तरात्रं न कुर्वंति यात्रोद्वाहादिमंगलम् " इति । अंगिरा अपि । " सर्वग्रासे तु सप्ताहमर्द्धग्रासे दिनत्रयम् । त्रिद्व्येकांगुलतो ग्रासे दिनमेकं विवर्जयेत् । " वसिष्ठः । " सर्वग्रासे दिनान्यष्टौ सर्वकार्ये विवर्जयेत् । षड्दिनानि त्रिभागोने अर्धग्रासे चतुर्दिनम् । चतुर्थांशे त्रिरात्रं स्याद्ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः " । अत्र कार्यस्यावश्यकत्वे परिहारो ज्योतिर्निबंधे । "पंचदिनानि वसिष्ठस्त्रिदिनं गर्गश्च कौशिकस्त्वेकम् । यवनाचार्यस्य मतं पंचमुहूर्त्तानि दूषयति राहुः " इति । अयं च निषेधो नित्यनैमित्तिकादिकृत्यातिरिक्तविषयः । गुरुः । " नित्ये नैमित्तिके काम्ये जपहोमक्रियासु च । उपाकर्मणि

चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यत" इति । शुभदोत्पातैश्च दुष्टं दिनमिति । शुभदोत्पाता वराहसंहितायाम् । " चंडाशनिमहीकंपसंध्यानिर्वातनिःस्वनाः । परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमनोदयाः । द्रुमेभ्यान्नरसस्नेहमधुपुष्पफलोद्गमाः । गोपक्षिमदवृद्धिश्च शुभाय मधुमाधवे" इत्यादय ऋतुपरत्वेनोक्ताः । एते यद्दिने भवंति तद्दिनमेव त्यज । अथ ग्रहभिन्नभं ग्रहैर्भौमादिभिर्भिन्नं भेदितं तथा यौद्धं ग्रहयोर्युद्धं यस्मिन् दिननक्षत्रे जातं तथोत्पातभं यस्मिन्नक्षत्रे दिव्यांतरिक्षभौमास्त्रिविधोत्पाताः संभूताः । एतानि ग्रहभिन्नयौद्धोत्पातनक्षत्राणि षण्मासं त्यज । भेदस्ताराखेटयोर्यत्र वा स्यादिति विवाहवृंदावने । नारदः । " ग्रहणोत्पातभं त्याज्ये मंगलेषु ऋतुत्रयम्" । इति ननु नक्षत्रसंधौ जायमाने ग्रहणे किं नक्षत्रं दूषयेदित्यत्राह शार्ङ्गधरः। " यस्मिन्विधुं राहुरिनं च धिष्ण्ये गृह्णाति तत्त्याज्यमृतत्रयं स्यात् । पाणिग्रहे पुंमरणं विधत्ते द्वयोर्भयोश्चेद्द्वयमेव जह्यात् । अन्यच्च । पक्षांतरेण ग्रहणद्वयं स्याद्यदा तदा तद्ग्रहणोपगं भम् । पक्षाद्विशुद्धं भवति द्वितीयं पाणिग्रहे शुद्ध्यति भोगषट्कात्" इति ॥ ३२ ॥

अथ ग्रहणनक्षत्रे ग्रासभेदेन निंद्यान्मासान् दिवसांश्चेंद्रवज्रयाह—

**नेष्टं ग्रहर्क्षं सकलार्द्धपादग्रासे क्रमात्तर्कगुणेंदुमासान् ॥ पूर्वं परस्तादुभयोस्त्रिघस्रा ग्रस्तेऽस्तगे वाऽप्युदितेऽर्द्धखंडे ॥ ३३ ॥**

नेष्टमिति ॥ ग्रहर्क्षं ग्रहणनक्षत्रं क्रमात्संपूर्णार्धचतुर्थांशग्रासे सति षट्त्र्येकमासान्नेष्टम् । गुरुः । सर्वग्रासे तु षण्मासांस्त्रीन्मासांस्तु दले ग्रहे । आपादग्रहणे धिष्ण्ये मासमेकं विवर्जयेत्" । अथ क्रमाद्ग्रस्तेऽस्तगे वाऽभ्युदितेऽर्धखंडे पूर्वं परस्तादुभयोस्त्रिघस्रा नेष्टाः । ग्रस्तास्ते पूर्वं त्रिदिनं नेष्टम् । ग्रस्तोदये पश्चात्त्रिदिनं नेष्टम् । अर्धखंडे ग्रस्तास्तग्रस्तोदययोरभावेऽपि । अर्धग्रासे उभयोः प्राक् पश्चाच्च त्रित्रिघस्रा नेष्टाः । गुरुः । " ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वं पश्चा-

द्रस्तोदये तथा । खंडग्रासे त्रित्रिदिनं निःशेषे सप्त सप्त च ” इति । कश्यपः । “ग्रस्तोदये परो दोषो ग्रस्तास्तेऽर्कशशीनयोः। द्युनिशार्द्धं तूभयं तत्खंडाखंडव्यवस्थयोः ” इति ॥ ३३ ॥

अथ सामान्यतोऽवश्यवर्ज्यानि पंचांगदूषणादीनि वसंततिलकानुष्टुब्भ्यामाह—

**जन्मर्क्षमासतिथयो व्यतिपातभद्रावैधृत्यमापितृदिनानि तिथिक्षयर्द्धी ॥ न्यूनाधिमासकुलिकप्रहरार्धपातविष्कंभवज्रघटिकात्रयमेव वर्ज्यम् ॥३४॥**

**परिघार्द्धं पंच शूले षट् च गंडातिगंडयोः ॥**
**व्याघाते नव नाड्यश्च वर्ज्याः सर्वेषु कर्मसु ॥ ३५ ॥**

जन्मर्क्षेति । परिघार्धमिति च ॥ जन्मनक्षत्रजन्ममासजन्मतिथयः शुभकर्मसु वर्ज्याः । अयं निषेध आद्यगर्भस्यैव । नारदः । “न जन्ममासे जन्मर्क्षे न जन्मदिवसेऽपि वा । आद्यगर्भसुतस्याथ दुहितुर्वा करग्रहः ” इति । जन्ममासलक्षणं जगन्मोहने वृद्धगर्गः । “ आरभ्य जन्मदिवसं यावत्त्रिंशद्दिनं भवेत् । जन्ममासः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु । ” वस्तुतस्तु यत्र शुक्लादिचांद्रमासे चैत्रादौ जन्माभूत् स चांद्रो मासो जन्ममासतया त्याज्यः। “इंद्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः संप्रकीर्तितः । अग्नीषोमौ स्मृतौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ ” इति हारीतोक्तमासलक्षणात् । व्यतीपातादयश्च वर्ज्याः । पितृदिनं मातापित्रोर्मरणदिनं श्राद्धदिनमित्यर्थः । तिथिक्षयर्द्धी तिथिक्षयस्तिथिवृद्धिश्च । तल्लक्षणमाह वसिष्ठः । “स्युस्तिस्रस्तिथयो वारे एकस्मिन्नवमा तिथिः । तिथिर्वारत्रये चैका त्रिद्युस्पृग्द्वेऽपि निंदिते । न्यूनमासोऽधिमासश्च वर्ज्यः । संक्रमद्वयसहितः क्षयमासः । अधिकमासोऽसंक्रांतः । कुलिकार्धप्रहरौ वक्ष्यमाणौ । पातो महापातः । विष्कंभयोगवज्रयोगयोराद्यं घटिकात्रयमेव वर्ज्यम् । एवकारेण कैश्चिद्वज्रयोगे नवघटिका वर्ज्या इति यदुक्तं यथा

" विष्कंभाद्यघटीत्रयं च नवकं व्याघातवज्रोद्भवम् " इति वृत्तशते । यथा "व्याघाते वज्रकेंका" इति गणेशज्योतिर्विदुक्तिरपि निरस्ता । "विष्कंभवज्रयोस्तिस्रः षट् च गंडातिगंडयोः । व्याघाते नव शूले तु पंच नाड्यो विगर्हिता " इति कश्यपोक्तेः । परिघस्याद्यार्द्धं वर्ज्यं शूलस्याद्याः पंच गंडातिगंडयोराद्याः षट् षट् घटिकाः व्याघाते चादिमा नव घटिका वर्ज्याः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथ पक्षरंध्रतिथीरावश्यकत्वे तन्निष्ठवर्ज्यघटीश्चानुष्टुभाह—

**वेदांगाष्टनवार्केंद्रपक्षरन्ध्रतिथौ त्यजेत् ॥**
**वस्वंकमनुतत्त्वाशाशरा नाडीः पराः शुभाः ॥३६॥**

वेदांगेति ॥ चतुर्थी षष्ठी अष्टमी नवमी द्वादशी चतुर्दशी एताः पक्षरंध्रतिथयो ज्ञेयाः आसु शुभकृत्यस्यावश्यकत्वे सति आदिमाः क्रमाद्वस्वंकमनुतत्वाशाशरा नाडीस्त्यजेत् । यथा चतुर्थ्यामादिमा अष्ट घटिकाः षष्ठ्यां नव अष्टम्यां चतुर्दश नवम्यां पंचविंशतिः द्वादश्यां दश चतुर्दश्यां पंच घटिकास्त्याज्या इत्यर्थः । परा उर्वरिताः शुभा ज्ञेयाः । वसिष्ठः । " चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा । षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राह्वया इमाः । क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः । भूताष्टमनुतत्वांकदश शेषास्तु शोभनाः । दोषनाडीषु यत्कर्म कृतं सर्वं विनश्यति " इत्यादि । कश्यपेन सर्वसाधारण्येन दशैव वर्जिताः ॥ ३६ ॥

अथ कुलिककालवेलायमघंटकंटकदोषाननुष्टुभाह—

**कुलिकः कालवेला च यमघंटश्च कंटकः ॥**
**वाराद्द्विघ्ने क्रमान्मन्दे बुधे जीवे कुजे क्षणः ॥ ३७ ॥**

कुलिक इति ॥ वर्तमानवारान्मंदे शनैश्चरे गणिते सति योऽङ्को भवति तस्मिन् द्विगुणे योऽङ्कस्तत्संख्याकः क्षणो मुहूर्तः कुलिको भवति । एवं बुधे जीवे भौमे वर्त्तमानवाराद्गणिते योऽङ्को भवति स द्विघ्नः । क्रमात् कालवेलायमघंटकंटकसंज्ञा दुष्टमुहूर्ताः स्युः । यथा

रवितः शनिः सप्तसंख्याकस्तस्मिन् द्विगुणे चतुर्दश जाताः तेन रवौ चतुर्दशो मुहूर्तः कुलिकः । एवं बुधे संख्या चत्वारः तद्विगुणोऽष्टमो मुहूर्त्तः कालवेला जीवे पंचाद्विघ्ने दशमो यमघंटः । भौमे तृतीये द्विघ्ने षष्ठो मुहूर्त्तः कंटकसंज्ञ इत्यर्थः । एवं सोमवारादावपि । अथ शुभकृत्यावश्यकत्वे सति देशभेदेन कुलिकादिदोषपरिहारमाह । गर्गः । " विंध्यस्योत्तरकूले तु यावदातुहिनाचलम् । यमघंटकदोषोऽस्ति नान्यदेशेषु विद्यते । मत्स्यांगमागधांध्रेषु यमघंटस्तु दोषकृत् । कांश्मीरे कुलिकं दुष्टमर्धयामस्तु सर्वत " इति । केचिन्मते स्यात्कालवेला रवितः शराक्षितर्कानलांगांबुधयो ५ । २ । ६ । ३ । ६ । ४ गजेंदू ८ । १ दिने निशायामृतुवेदनेत्रनगेषुरामा ६ । ४ । २ । ७ । ५ । ३ विधुदंतिनौ १ । ८ च ॥ गजेंदू इत्यर्धप्रहरद्वयं शनौ । यात्रायां मरणं काले वैधव्यं पाणिपीडने । व्रते ब्रह्मवधः प्रोक्तः शुभकर्म ततस्त्यजेत् ॥ गौडाः । सूर्ये वेदशरौ ४ । ५ चंद्रे हयपक्षौ ७ । २ कुजेऽक्षिभूः २ । १ ज्ञे बाणाग्नी ५ । ३ गुरौ दंतिहयौ ८ । ७ शुक्रे त्रिवेदकौ ३ । ४ मंदे तर्कगजौ ६ । ८ ज्ञेयौ यामार्द्धावशुभौ सदा " इति ॥ ३७ ॥

अथ सूर्यादिवारेषु शिष्याणां सद्य एव दोषज्ञानार्थं दुर्मुहूर्तादिनामकान्मुहूर्ताञ्छार्दूलविक्रीडितवसंततिलकाभ्यामाह—

सूर्ये षट्स्वरनागदिङ्मनुमिताश्चंद्रेऽब्धिषट्कुञ्जरांकार्का विश्वपुरन्दराः क्षितिसुते द्व्यब्ध्यग्नितर्का दिशः॥ सौम्ये द्व्यब्धिगजांकदिङ्मनुमिता जीवे द्विषट्भास्कराः शक्राख्यास्तिथयः कलाश्च भृगुजे वेदेषुतर्कग्रहाः ॥३८॥ दिग्भास्करा मनुमिताश्च शनौ शशिद्विनागा दिशो भवदिवाकरसंमिताश्च ॥ दुष्टः क्षणः कुलिककंटककालवेलाः स्युश्चार्द्धयामयमघंटगताः कलांशाः ॥ ३९ ॥

सूर्ये इति । दिग्भास्करा इति च ॥ रविवारे षष्ठसप्ताष्टमदशमचतुर्दशमुहूर्ता निंद्याः । एवं सर्वत्र । अयमर्थो मूले न्यासतः स्पष्ट एव । एषु मुहूर्त्तेषु कश्चिद्दुर्मुहूर्तः कश्चित् कुलिकः कंटकः कालवेलाख्योऽर्धयामाख्यो यमघंटाख्यः स्यात् । तत्प्रमाणं कलांशः दिनमानस्य षोडशांशः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ विवाहादिशुभकृत्ये होलिकाष्टकनिषेधं देशपरत्वेनाह—

**विपाशेरावतीतीरे शुतुद्र्याश्च त्रिपुष्करे ॥**
**विवाहादिशुभे नेष्टं होलिकाप्राग्दिनाष्टकम् ॥ ४० ॥**

विपाशेति ॥ विपाशा इरावती शुतद्रूः एताः पश्चिमदेशप्रसिद्धा नद्यस्तासां तीरे उभयतटवर्तिदेशे त्रिपुष्करे देशे च होलिका फाल्गुनशुक्लपौर्णिमा ततः प्राक् दिनाष्टकं विवाहादिशुभकृत्ये नेष्टं निषिद्धम् । अर्थादन्यदेशे न निषिद्धम् ॥ ४० ॥

अथ मृत्युयोगादिदुष्टयोगपरिहारमनुष्टुभाह—

**मृत्युक्रकचदग्धादीनिंदौ शस्ते शुभाञ्जगुः ॥**
**केचिद्यामोत्तरं चान्ये यात्रायामेव निंदितान् ॥ ४१ ॥**

मृत्युक्रकचेति ॥ मृत्युयोगा दास्रादर्क इत्यादिनाऽऽनंदादिषूक्ताः । क्रकचाः षष्ठ्यादितिथयो मंदाद्विलोममित्युक्ताः । दग्धादियोगाः सूर्येशपंचाग्नीत्यादिनोक्ताः । चंद्रे शस्ते कर्तुर्गोचरेण समीचीने सति एतान्योगाञ्छुभाञ्छुभफलदाञ्जगुरूचुः । राजमार्तंडः । क्रकचा मृत्युदग्धाख्या दिनं दग्धं तथैव च । चंद्रे शुभे क्षयं यांति वृक्षा वज्रहता इव । अथ केचिदाचार्याः यामोत्तरं प्रहरोत्तरं मृत्युक्रकचदग्धादीन् शुभान् जगुः । स एवाह । उत्पाते यमघंटे च काणे च क्रकचे तथा । तिथौ दग्धे च काले च प्राग्यामात्परतः शुभम्" इति । अथान्य आचार्या मृत्युक्रकचदग्धादीन् यात्रायामेव निंदितान् जगुः । विवाहादौ तु न दोषः । लल्लः । " वारर्क्षतिथियोगेषु यात्रामेव विवर्जयेत् । विवाहदीनि कुर्वीत गर्गादीनामिदं वचः " ।

निंद्येष्विति शेषः । अन्यच्च । अयोगेषु च सर्वेषु वर्जयेद्घटिकाद्वयम् । उत्पातमृत्युकाणानां पंचषट्सप्तनाडिकाः ॥ ४१ ॥

पुनरप्यपवादं भुजंगप्रयातेनाह—

**अयोगे सुयोगोऽपि चेत्स्यात्तदानीमयोगं निहत्यैष सिद्धिं तनोति ॥ परे लग्नशुद्धया कुयोगादिनाशं दिनार्द्धोत्तरं विष्टिपूर्वं च शस्तम् ॥ ४२ ॥**

अयोग इति ॥ अयोगे क्रकचादौ सति चेत्सुयोगः सिद्धियोगोऽपि स्यात् तदा एष सिद्धियोगः अयोगफलं निहत्य सिद्धिं तनोति निष्पादयति । मार्तंडः। "अयोगः सिद्धियोगश्च द्वावेतौ भवतो यदि। अयोगो हन्यते तत्र सिद्धियोगः प्रवर्त्तते ।" परे आचार्या लग्नशुद्धया कुयोगादिनाशमाहुः । यदाह स एव । यत्र लग्नं विना किंचित्क्रियते शुभसंज्ञकम् । तत्र तेषामयोगानां प्रभावाज्जायते फलम् । अथावश्यककृत्ये कालांतराभावे परिहारमाह । विष्टिपूर्वमिति । विष्टिर्भद्रा सा पूर्वादिर्यस्य विष्ट्यादिकं मध्याह्नानंतरं शस्तमाहुः । उक्तं च । विष्टिरंगारकश्चैव व्यतीपातः सवैधृतिः । प्रत्यरं जन्मनक्षत्रं मध्याह्नात्परतः शुभम् " इति ॥ ४२ ॥

अथ भद्रां शालिन्याह—

**शुक्ले पूर्वार्द्धेऽष्टमीपंचदश्योर्भद्रैकादश्यां चतुर्थ्यां परार्द्धे ॥ कृष्णेऽत्यार्द्धे स्यात्तृतीयादशम्योः पूर्वे भागे सप्तमीशंभुतिथ्योः ॥ ४३ ॥**

शुक्ल इति ॥ शुक्ले शुक्ले पक्षेऽष्टम्यां पूर्णिमायां च पूर्वार्द्धे भद्रा स्यात् । एकादश्यां चतुर्थ्यां चोत्तरार्द्धे भद्रा। कृष्णे पक्षे तृतीयायां दशम्यां च अंत्यार्द्धे उत्तरार्द्धे । सप्तम्यां शंभुतिथौ चतुर्दश्यां च पूर्वार्द्धे पूर्वभागे भद्रा स्यात । भद्रास्वरूपं रत्नमालायाम् । उद्बद्धोद्भटतरेत्यादि ॥ ४३ ॥

अथ चतुर्थ्यादितिथिषु भद्राया मुखपुच्छविभागं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

पञ्चद्व्यद्रिकृताष्टरामरसभूयामादिघटचः शरा
विष्टेरास्यमसद्गजेंदुरसरामाद्र्यश्विबाणाब्धिषु ॥
यामेष्वंत्यघटीत्रयं शुभकरं पुच्छं तथा वासरे
विष्टिस्तिथ्यपरार्द्धजा शुभकरी रात्रौ च पूर्वार्धजा ४४

पंचद्व्यद्रीति ॥ चतुर्थ्यादितिथीनां पंचादिप्रहरेषु आदिघटचः शराः पंचसंख्या विष्टेर्भद्राया आस्यं मुखम् । यथा। चतुर्थ्याः पंचमप्रहरे आदिभूताः पंचघटचो भद्रामुखम् । एवमष्टम्यां द्वितीयंप्रहरे। एकादश्यां सप्तमप्रहरे। पूर्णिमायां चतुर्थप्रहरे। तृतीयायामष्टमे। सप्तम्यां तृतीये। दशम्यां षष्ठे। चतुर्दश्यां प्रथमे प्रहरे भद्रामुखं स्यात्। तदसत्। अशुभमित्यर्थः। अथ पुनश्चतुर्थ्यादितिथीनां क्रमेण गजेंद्वित्यादिप्रहरेषु अंत्यमंते भवं घटीत्रयं पुच्छसंज्ञं तच्छुभकरम् । यथा चतुर्थ्या अष्टमप्रहरस्यांत्यघटीत्रयं भद्रापुच्छम्। एवमष्टम्यादिषु प्रथमादिप्रहरस्यांत्यघटीत्रयं पुच्छं ज्ञेयम्। तत्र भद्राकर्माणि वासिष्ठः। "वधबंधविषाग्न्यस्त्रच्छेदनोच्चाटनादि यत्। तुरंगमहिषोष्ट्रादि कर्म विष्ट्यां तु सिद्ध्यति"। अंगविभागः कश्यपसंहितायाम्। "मुखे पंच गले त्वेका वक्षस्येकादश स्मृताः। नाभौ चतस्रः षट् कट्यां तिस्रः पुच्छे तु नाडिकाः। कार्यहानिर्मुखे मृत्युर्गले वक्षसि निःस्वता। कट्यामुन्मत्तता नाभौ च्युतिः पुच्छे ध्रुवो जयः"। अथ विष्टिपरिहारमाह। तथेति। तिथ्यपरार्द्धजा तिथ्युत्तरार्द्धभूता विष्टिर्वासरे दिवसे यदि स्यात्तदा शुभकरी। तथा तेनैव प्रकारेण तिथिपूर्वार्द्धोत्था रात्रौ शुभकरी। लल्लः। "दिवा परार्धजा विष्टिः पूर्वार्द्धोत्था यदा निशि। तदा विष्टिः शुभायेति कमलासनभाषितम्।" नारदस्तु निषेधमाह। "करणानि बवादीनि शुभसंज्ञानि षट् क्रमात्। क्रमायाताक्रमायाता विष्टिर्नेष्टा तु मंगल इति ॥ ४४ ॥

अथ भद्रानिवासं तत्फलं चानुष्टुभाह—

**कुंभकर्कद्वये मर्त्यें स्वर्गेऽब्जेऽजात्रयेऽलिगे ॥**
**स्त्रीधनुर्जूकनक्रेऽधोभद्रा तत्रैव तत्फलम् ॥ ४९ ॥**

कुंभकर्केति ॥ अब्जे चंद्रे कुंभमीनस्थे कर्कद्वये कर्कसिंहराशिस्थिते मनुष्यलोके भद्रा तिष्ठति । अथ मेषात्रये मेषवृषमिथुनस्थिते अलिगे वृश्चिकस्थे चंद्रे च स्वर्गलोके भद्रा तिष्ठति । कन्यातुलाधनुर्मकरराशिषु चंद्रे अधः पाताललोके भद्रा तिष्ठति। तत्रैव मर्त्यस्वर्गपातालेषु फलं स्वोक्तं शुभाशुभं भद्रा ददातीत्यपवादद्वारा प्रयोजनमुक्तं भवति । उक्तं च । " मेषोक्षकौर्प्यमिथुने घटसिंहमीनकर्केषु चापमृगतौलिसुतासु चंद्रे । स्वर्मर्त्यनागनगरीः क्रमशः प्रयाति विष्टिः फलान्यपि ददाति हि तत्र देशे । " उक्तं च भूपालवल्लभे । " कर्ककुंभद्वये भूस्था कौर्प्यजत्रितये द्युगा । कन्याचापद्वये चंद्रे भद्रा पातालवासिनी " ॥ ४९ ॥

अथ कालशुद्धौ निषेध्यवस्तूनि शार्दूलविक्रीडितेनाह—

**वाप्यारामतडागकूपभवनारंभप्रतिष्ठाव्रतारंभोत्सर्गवधूप्रवेशनमहादानानि सोमाष्टके ॥ गोदानाग्रयणप्रपाप्रथमकोपाकर्मवेदव्रतं नीलोद्वाहमथातिपन्नशिशुसंस्कारान्सुरस्थापनम् ॥ ४६ ॥**

वाप्यारामेति ॥ वापी दीर्घिका । आराम उपवनम् । तडागः पुष्करिणी । कूपः प्रसिद्धः। भवनं गृहम् । एतेषामारंभप्रतिष्ठे । आरंभो निर्माणम् । प्रतिष्ठा उत्सर्गः । तत्र गृहप्रतिष्ठा गृहप्रवेशो ज्ञेयः । व्रतानामनंतव्रतादीनामारंभो ग्रहणम् । उत्सर्ग उद्यापनम् । महादानानि तुलापुरुषादीनि । सोमः सोमयागः । अष्टका अष्टकाश्राद्धम् । गोदानं केशांतसंज्ञं कर्म । आग्रयणं नवान्नेष्टिः । प्रपा जलशाला । प्रथमकोपाकर्मप्रथमारभ्यमाणं श्रावणीकर्म । वेदव्रतं महानाम्न्यादित्रयं महानाम्नीव्रतमुपनिषद्व्रतं वेदव्रतं च । नीलोद्वाहः काम्य-

वृषोत्सर्गः । अतिपन्नशिशुसंस्काराः अतिपन्ना अतिक्रांता जातकर्मादयः शिशूनां संस्काराः । देवस्थापनम् ॥ ४६ ॥

अथान्यानि शार्दूलविक्रीडितेनाह—

दीक्षामौंजिविवाहमुंडनमपूर्वं देवतीर्थेक्षणं संन्यासाग्निपरिग्रहौ नृपतिसंदर्शाभिषेकौ गमम् ॥ चातुर्मास्यसमावृती श्रवणयोर्वेधं परीक्षां त्यजेद्वृद्धत्वास्तशिशुत्व इज्यसितयोर्न्यूनाधिमासे तथा ॥४७॥

दीक्षामौंजीति॥ दीक्षा मंत्रग्रहणादिका । मौंजीविवाहौ प्रसिद्धौ । मुंडनं चौलम् । अपूर्वं देवेक्षणं तीर्थेक्षणं च । संन्यासः प्रसिद्धः अग्निपरिग्रहोऽग्निहोत्रम् । अपूर्वं राजदर्शनं राजाभिषेकश्च । गमं गमनमपूर्वमेव । चातुर्मास्यं चातुर्मास्ययागः । समावृतिर्मौंजीविसर्गः । श्रवणयोर्वेधः कर्णवेधः । परीक्षा तप्तमाषादिरूपा दिव्यमिति यावत् । एतानि कर्माणि बुधो न कुर्यात् । कदा । इज्यासितयोर्बृहस्पतिशुक्रयोर्वृद्धत्वे अस्ते च शिशुत्वे बाल्ये च । तथा न्यूनाधिकमासे क्षयमासे अधिकमासे च न कुर्यात् । अत्र मूलवचनानि । शातातपः । " अस्तं गते गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे । उद्यापनमुपारंभं व्रतानां नैव कारयेत् " । ऋक्षोच्चयः । " वापीकूपतडागयागगमनं क्षौरं प्रतिष्ठाव्रतं विद्या मंदिरकर्णवेधनमहादानं वनं सेवनम् । तीर्थस्नानविवाहदेवभवनं मंत्रादिदेवेक्षणं दूरेणैव जिजीविषुः परिहरेदस्तं गते भार्गवे । उपनयनं गोदानं परिणयगृहप्रवेशगमनानि । अस्तमितेषु न कुर्यात्सुरगुरुभृगुपुत्रचंद्रेषु " । अस्तमयादिफलमाह बादरायणः । " गुरोरस्ते पतिं हन्याच्छुक्रास्ते चैव कन्यकाम् । चंद्रे नष्टे उभौ हन्यात्तस्मादस्तं विवर्जयेत् । बालभावे स्त्रियं हन्याद्वृद्धभावे नरं तथा । तस्माद्बाल्ये च वार्द्धके च विवाहं नैव कारयेत् " । अथाधिमासे वर्ज्यानि गृह्यपरिशिष्टे । " सोमयागादिकर्माणि नित्यान्यपि मलिम्लुचे । तथैवाग्रयणाधा-

नचातुर्मास्यादिकान्यपि । महालयाष्टकाश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म यत्। स्पष्टमासविशेषाख्यं विहितं वर्जयेन्मले ”। गर्गबृहस्पती। “ अग्न्याधानं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च । वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः । मांगल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् ”। मरीचिः। “ गृहप्रवेशगोदानस्थानाश्रममहोत्सवम्। न कुर्यान्मलमासे तु संसर्पेऽहर्पतौ तथा । वसिष्ठः । वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठा यज्ञकर्म च । न कुर्यान्मलमासे तु संसर्पेऽहर्पतौ तथा। ” यदा क्षयमासो भवति तदा क्षयमासस्य पूर्वोत्तरावधिमासौ भवतः तत्र पूर्वः संसर्पो द्वितीयोऽहर्पतिः । एतानि गुरुशुक्रयोरस्तादावपि वर्ज्यानीत्याहुः। गार्ग्यः। “ बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वास्तं गते गुरौ । मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम् ” । अत्र देवदर्शनमपूर्वं विवक्षितम्। तदाह गर्गः। “ अपूर्वदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभार्गवे। मलमासेऽप्यनावृत्ततीर्थयात्रायां विवर्जयेत् ” अनावृत्ता अपूर्वतीर्थयात्रा। अत्र नियतकालानि सीमंतनामकरणादीनि गुर्वादेरस्तादिसत्त्वेऽपि स्वस्वकाल एव कार्याणि। गुरुः। “ मासप्रयुक्तकार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः । न दोषकृन्मले मासे गुर्वादित्यादिकं तथा । अन्यत्रापि । सीमंतजातकादीनि प्राशनांतानि यानि वै। न दोषो मलमासस्य मौढ्यस्य गुरुशुक्रयो ॥ ” इति । वसिष्ठः। “ अतीतकालान्यखिलानि तानि कार्याणि सौम्यायनगे दिनेशे। सिते गुरौ चाप्यथ दृश्यमाने तदुक्तपंचांगदिनेऽप्यखंडे” । अतएवातिपन्नशिशुसंस्कारानित्युक्तम्॥ ४७॥

अथ सिंहमकरस्थगुर्वादिष्वतिदेशमाह—

**अस्ते वर्ज्यं सिंहनक्रस्थजीवे वर्ज्यं केचिद्वक्रगे चातिचारे॥ गुर्वादित्ये विश्वघस्रेऽपि पक्षे प्रोचुस्तद्वद्दंतरत्नादिभूषाम्॥ ४८॥**

अस्ते वर्ज्यमिति॥ यदस्ते गुर्वादेरस्ते वर्ज्यं निषिद्धमुक्तं तत्सिंहस्थे गुरौ मकरस्थे च गुरौ वर्ज्यं निषिद्धम्। देवीपुराणे। “सिंहस्थे

गुरौ यत्नात्सर्वारंभान्विवर्जयेत्। प्रारब्धं न च सिद्धयेत महाभयकरं भवेत्। पुत्रभ्रातृकलत्राणि हन्याच्छीघ्रं न संशयः। कारको व्रजते नाशं संतानं म्रियतेऽचिरात्। देवारामतडागानि प्रपोद्यानगृहाणि च। विवाहयज्ञोपनयचूडादि च न सिद्धयति। यथा सिंहस्थितो जीवस्तथैव मकरस्थितः"। अयमपि निषेधो नियतकालानां न भवति। उक्तं च शार्ङ्गीये। "सीमंतजातकादीनि प्राशनांतानि यानि वै।" कर्तव्यानि न दोषोऽस्ति पंचाननगते गुरौ। उपलक्षणमेतत्। संग्रहे वसिष्ठः। "नीचराशिगतो जीवः प्रशस्तः सर्वकर्मसु। नीचे नीचांशकस्त्याज्यो यस्मादंशेषु नीचता"। विशेषो मांडव्येनोक्तो देवीपुराणे। "मकरस्थो यदा जीवो वर्जयेत्पंचमांशकम्। शेषेष्वपि च भागेषु विवाहः शोभनो मतः"। तोडरानंदः। अतिचारे सप्तदिनं वक्रे द्वादशमेव च। नीचस्थितेऽपि वागीशे मासमेकं विवर्जयेत्"। ज्योतिर्निबंधे। "हरिनीचारिभागेऽपि व्रतोद्वाहादिमंगलम्। न निषिद्धं यदि स्वोच्चे स्वभे वा संस्थितो गुरुः। मघां त्यक्त्वा यदा गच्छेत्फाल्गुनीं च बृहस्पतिः। पुत्रिणी धनिनी कन्या सौभाग्यं सुखमश्नुते" इति। क्वचिदपूर्वतीर्थयात्रायां मौढ्यादिदोषो नास्ति। "गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये। सुरासुराणां गुर्वोश्च मौढ्यदोषो न विद्यते।" वायुपुराणे त्रिस्थलीसेतौ। "गयायां सर्वकालेषु पिंडं दद्याद्विधानतः। अधिमासे जन्मदिने ह्यस्ते च गुरुशुक्रयोः। न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थे च बृहस्पतौ। अधिमासे सिंहगुरावस्ते च गुरुशुक्रयोः। तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना" इति। अथ गुर्वाद्यस्ते यद्वर्ज्यं तद्वक्रगेऽपि गुरौ वर्ज्यम्। वात्स्यः। "यात्रोद्वाहप्रतिष्ठां च ग्रहचूडाव्रतादिकम्। वर्जयेद्यत्नतश्चैव जीवे वक्रातिचारगे।" अस्यापवादो राजमार्तंडे। "वक्रातिचारगे जीवे वर्जयेत्तदनंतरम्। व्रतोद्वाहादिचूडायामष्टाविंशतिवासरान्"। दीपिकायाम्। त्रिकोणजायाधनलाभराशौ वक्रातिचारेण गुरुः प्रयातः। यदा तदा प्राह शुभं विलग्नं विवाहपाणिग्रहणं

वसिष्ठः" । अथ केचिद्गुरुसहिते आदित्ये एकराशिगतौ गुरुसूर्यौ-विति यावत् । गुर्वादित्येऽपि सर्वं शुभकर्म वर्ज्यम् । शौनकः । "एकराशिगतौ सूर्यजीवौ स्यातां यदा पुनः । व्रतबंधाविवाहादि शुभं कर्माखिलं त्यजेत्" । अथ केचिद्विश्वघस्रेऽपि पक्षे यस्मिन्पक्षे तिथिद्वयनाशः स त्रयोदशदिनः पक्षः सोऽतिनिंद्यः । उक्तं च । पक्षस्य मध्ये द्वितिथी पतेतां तदा भवेद्रौरवकालयोगः । पक्षे विनष्टे सकलं विनष्टमित्याहुराचार्यवराः समस्ताः । तथा " त्रयोदशदिने पक्षे तदा संहरते जगत् । अपि वर्षसहस्रेण कालयोगः प्रकीर्त्तितः " इति । तस्मिन्पक्षे शुभकर्म वर्ज्यमित्याहुः । चंडेश्वरः । " त्रयोदशदिने पक्षे विवाहादि न कारयेत् । गर्गादिमुनयः प्राहुः कृते मृत्युस्तदा भवेत् । "उपनयनं परिणयनं वेश्मारंभादिपुण्यकर्माणि । यात्रा द्विक्षयपक्षे कुर्यान्न जिजीविषुः पुरुषः" । अथ तद्वत्तेन प्रकारेण दंतरत्नादिभूषां दंता हस्तिदंतास्तत्संबंधिनीं भूषां च आदिशब्दात् सुवर्णमणिसंबंधिनीं च भूषां वर्ज्यां प्रोचुः । पूर्वस्मिन्निषेधकाले इत्यर्थः । राजमार्तंडः "यात्रां चूडां विवाहं श्रुतिविवरावीधिं शंखसद्मप्रवेशप्रासादोद्यानहर्म्यं सुरनरभवनारंभविद्याविधाने । मौंजीबंधं प्रतिष्ठां मणिकनकरदाधारणं कुर्वते ये ॥ मृत्युः सिंहस्थितेज्ये गुरुदिनकरयोरेकराशिस्थयोश्च" इति । सिंहस्थगुरोरुपलक्षणत्वाद्गुर्वस्तादावपि प्रथमकर्त्तव्यसुवर्णादिधारणनिषेध इत्यर्थः ॥ ४८ ॥

अथ सिंहस्थगुरोः प्रकारत्रयेण परिहारमिंद्रवज्रयाह—

**सिंहे गुरौ सिंहलवे विवाहो नेष्टोऽथ गोदोत्तरतश्च यावत् ॥ भागीरथीयाम्यतटे हि दोषो नान्यत्र देशे तपनेऽपि मेषे ॥ ४९ ॥**

सिंहे गुराविति ॥ अत्र प्रथममंशभेदेन परिहारः । सिंहस्थे गुरौ सत्यपि सिंहांशे सत्र्यंशत्रयोदशांशे १३ । २० भ्योऽनंतरं सत्र्यंशमंशत्रयम् ३ । २० पंचमो नवांशः सिंहांशस्तत्र गुरौ सति विवाहो नेष्टः । " सिंहराशौ तु सिंहांशे यदा भवति वाक्पतिः । सर्वदेशे-

ष्वयं त्याज्यो दंपत्योर्निधनप्रदः " इति राजमार्त्तंडोक्तेः । अतोऽवशिष्टांशेषु विवाहादि शुभं भवतीत्यर्थः । " सिंहेऽपि भगदैवत्ये गुरौ पुत्रवती भवेत् । अत्यंतसुभगा साध्वी धनधान्यसमृद्धिदा " इत्यादि तत्रैवोक्तेः । अथ देशभेदेन द्वितीयपरिहार उच्यते । अथ गोदोत्तरतः गोदावरी नदी तस्या उत्तरतीरमारभ्य भागीरथीयाम्यतटं दक्षिणकूलं मर्यादीकृत्य गंगांतरालवर्ती यो देशस्तत्र सिंहस्थगुरुर्वर्ज्यो नान्यदेशे । लल्लः । " गोदावर्युत्तरतो यावद्भागीरथीतटं याम्यम् । तत्र विवाहो नेष्टः सिंहस्थे देवपतिपूज्ये " ॥ अर्थाद्गोदावरीदक्षिणतटे भागीरथ्युत्तरदेशे च सिंहस्थगुरुदोषो नास्ति । वसिष्ठः । " भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तथा । विवाहो व्रतबन्धो वा सिंहस्थेज्ये न दुष्यति " इति । अत्र विवाहव्रतबंधावेव न निषिद्धौ । आभ्यामन्यानि शुभकर्माणि निषिद्धान्येव । अपवादस्य संकोचाश्रयत्वादुपलक्षणायोगात् । अथ तृतीयः परिहारः । तपने सूर्ये मेषराशौ विद्यमाने सति वा सिंहस्थगुरोर्दोषो नास्ति । ज्योतिर्निबन्धे । " मंगलानीह कुर्वीत सिंहस्थो वाक्पतिर्यदा । भानौ मेषगते सम्यगित्याहुः शौनकादयः " इति ॥

सिंहराशिगतगुरुनिषेधवाक्यानां प्रतिप्रसववाक्यानां च निर्गलितार्थमनुष्टुब्द्वयेनाह—

**मघादिपञ्चपादेषु गुरुः सर्वत्र निंदितः ॥**
**गंगागोदान्तरं हित्वा शेषांघ्रिषु न दोषकृत् ॥ ५० ॥**
**मेषेऽर्के सन् व्रतोद्वाहौ गंगागोदांतरेऽपि च ॥**
**सर्वः सिंहगुरुर्वर्ज्यः कलिङ्गे गौडगुर्जरे ॥ ५१ ॥**

मघादिपंचपादेष्वित्यादि मेषेऽर्क इत्यादि च ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ मकरस्थगुरोः प्रकारद्वयेन परिहारं शालिन्याह—

**रेवापूर्वे गंडकीपश्चिमे च शोणस्योदग्दक्षिणे नीचइज्यः ॥ वर्ज्यो नायं कौंकणे मागधे च गौडे सिंधौ वर्जनीयः शुभेषु ॥ ५२ ॥**

रेवापूर्वे इति ॥ रेवाया नर्मदायाः पूर्वदेशे गंडकीनद्याः पश्चिमे विभागे शोणनदस्योत्तरदक्षिणभागे नीच इज्यो मकरस्थगुरुर्न वर्ज्यः। लल्लः " नर्मदापूर्वभागे तु शोणस्योत्तरदक्षिणे । गंडक्याः पश्चिमे भागे मकरस्थो न दोषभाक् । अन्यदेशेषु निषिद्धस्तत्र निषिद्धदेशानाह । अयमिति । अयं मकरस्थगुरुः कौंकणदेशे च सिंधुदेशे च शुभकृत्येषु वर्ज्यो निषिद्धः । उक्तं च । मागधे गौडदेशे च सिंधुदेशे च कौंकणे । व्रतं चूडां विवाहं च वर्जयेन्मकरे गुरौ "। एभ्योऽन्यदेशेषु मंगलमर्थान्मध्यमम् ॥ ५२ ॥

अथ लुप्तसंवत्सरदोषं सापवादं वंशस्थवृत्तेनाह—

**गोऽजांत्यकुंभेतरभेऽतिचारगो नो पूर्वराशिं गुरुरेति वक्रितः ॥ तदा विलुप्ताब्द इहातिनिंदितः शुभेषु रेवासुरनिम्नगान्तरे ॥ ५३ ॥**

गोऽजांत्येति ॥ गौर्वृषः अजो मेषः अंत्यो मीनः कुंभः प्रसिद्धः एभ्य इतरभे अन्यराशौ मिथुनादौ अतिचारगो गुरुर्महातिचारेण समागतः सन् पश्चात्कियद्भिर्दिनैर्वक्रितो यदा पूर्वराशिं नो एति भुक्तराशिं नागच्छति तदा विलुप्ताब्दो लुप्तसंवत्सर उच्यते । स लुप्तसंवत्सरः शुभकृत्ये अतिनिंदितो निषिद्धः। उक्तं च। "अतिचारगतो जीवस्तं राशिं नैति चेत्पुनः । लुप्तः संवत्सरो ज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु"। यदा तु गोऽजांत्यकुंभेषु पूर्वराशेः सकाशान्महातिचारेणायाति पूर्वराशिं च नैति तदा न लुप्तसंवत्सरदोषः । गुरुः । "मेषे वृषे झषे कुंभे यद्यतीचारगो गुरुः। न तत्र काललोपः स्यादित्याह भगवान्यमः " । दशमासभोगानंतरमतिचारेऽपि लुप्ताब्ददोषो नास्ति । च्यवनः । " मासान्दशैकादश वा प्रयुज्य राशेर्यदा राशिमुपैति जीवः । भुंक्ते न पूर्वं च पुनस्तथापि न लुप्तसंवत्सरमाहुरार्याः " । पूर्वं राशिभेदेन परिहारमुक्त्वेदानीं देशभेदेन परिहारमाह । लुप्तसंवत्सरो रेवा नर्मदा सुरनिम्नगा भागीरथी तयोर्न-

द्योरंतरेऽगतिनिषिद्धः । उक्तं च । " लुप्ताब्ददोषोऽत्रमतेन मध्ये सोमोद्भवायाः सुरनिम्नगायाः " इति । नारदेन समसप्तकदोषो विवाहे वर्जितः । "समदृष्टिर्गुरोः शुक्रे तन्मासे तु प्रयत्नतः । विवाहादि न कुर्वीत नर्मदातीर उत्तरे " ॥ ५३ ॥

अथ वारप्रवृत्तिमुपजात्याह—

**पादोनरेखापरपूर्वयोजनैः पलैर्युतोनास्तिथयो दिनार्द्धतः ॥ ऊनाधिकास्तद्विवरोद्भवैः पलैरूर्ध्वं तथाऽधो दिनपप्रवेशनम् ॥ ५४ ॥**

पादोनेति ॥ रेखा भूमध्यरेखा "पुरी राक्षसी देवकन्याऽथ कांची" इत्याद्युक्ता । उपलक्षणमेतत् । लंकात आरभ्य सुमेरुमस्तकदत्तसूत्राधोवर्तिदेशास्ते मध्यरेखाशब्देनोच्यंते । यस्मिन् देशे वारप्रवृत्तिश्चिकीर्षिता स देशो रेखातः प्राक् पश्चिमे यावंति योजनानि भवंति तानि स्वचतुर्थांशोनानि कृत्वा तावद्भिः पलैस्तिथ्यः पंचदशघटिकायुक्तोनाः कार्याः । यदा मध्यरेखातः प्रत्यग्योजनानि तदा युक्ताः । यदा तु प्राग्योजनानि तदोनाः कार्याः । अथ यद्दिने वारप्रवृत्तिरिष्टा तद्दिवसे यद्दिनार्द्धं "चरपलयुतहीना नाडिकाः पंचचंद्राः" इत्यादिप्रकारसिद्धं तस्माद्दिनार्द्धात्संस्कारविशिष्टाः पंचदश ऊनाधिकाश्चेद्भवंति तदा तद्विवरोद्भवैः पलैर्दिनार्द्धस्य संस्कारविशिष्टपंचदशानां च यद्विवरमंतरं तत्संबंधेनोत्थैरुत्पन्नैः पलैरूर्ध्वं तथाऽधो दिनपस्य वारस्य प्रवेशः । यदा संस्कारविशिष्टाः पंचदश दिनार्द्धतश्चेदूनाः स्युस्तदा सूर्योदयादूर्ध्वं वारप्रवृत्तिः । यदा संस्कारविशिष्टाः पंचदश दिनार्द्धतोऽभ्यधिकास्तदा सूर्योदयात्प्राग्वारप्रवृत्तिरित्यर्थः । यथा वाराणसी रेखाभिधानात्कुरुक्षेत्रात्प्राक्त्रिषष्टियोजनानि ६३ पादेन चतुर्थांशेनोनानि ४७।१५ प्राग्योजनत्वादेतैः पलैरूनाः पंचदशघटिका जाताः १४।१३ दिनार्द्धं १६।३० अस्मान्न्यूना इति विवरम् २।१७ तेनाभिर्घटिकाभिः सूर्योदयादूर्ध्वं

वारप्रवृत्तिः। यदा दिनार्द्धं १३। १९ अस्मादधिका इति विवरम् ०।२८ एताभिर्घटीभिः सूर्योदयात्प्राग्वारप्रवृत्तिरित्यर्थः ॥ ५४ ॥

अथ वारप्रवृत्तिप्रयोजनपुरःसरं कालहोरामनुष्टुभाह—

**वारादेर्घटिका द्विघ्नाः स्वाक्षंहृच्छेषवर्जिताः ॥**
**सैकास्तष्टा नगैः कालहोरेशा दिनपात्क्रमात् ॥५५॥**

वारादेरिति ॥ वारप्रवृत्तिप्रकारेण यस्मिन्क्षणे वारप्रवृत्तिर्जाता तत इष्टघट्यो द्विगुणाः कार्याः। ता द्विस्थाने स्थाप्याः। तत्र पंचभिर्भक्ते यल्लब्धं तत्त्याज्यम्। यच्छेषं तद्द्विगुणघटीमध्ये वर्जितं कार्यम्। एवंविधा घट्यः सैका एकयुक्ताः कार्याः सप्तभिस्तष्टा अवशिष्टाः कालहोरेशाः स्युः। ते दिनपात् वारात् क्रमात् गणनीयाः। यथा रविवारे इष्टघटिकाः ६ द्विगुणाः १२ पृथगक्षा ५ तशेष २ वर्जिताः १० सैका ११ नगैः ७ तष्टाः शेषं ४ रविवारे क्रमाद्गणनया चतुर्थो बुधस्तस्य होरा इत्यादि विवाहवृन्दावने उदयमारभ्य होरा उक्ताः। यथा तत्कालार्कन्यूनलग्नांशपिंडो भक्तः पंचक्षोणिभिर्भुक्तहोराः। "भास्वच्छुक्रज्ञेंदुसौरेज्यभौमाः संख्यायेरन्वारतस्ते तदीशाः" इति। अनयोर्विषमविभागो वसिष्ठसंहितायाम् "वारप्रवृत्तिविज्ञानं क्षणवारार्थमेव हि। अखिलेष्वन्यकार्येषु दिनादिरुदयाद्भवेत्"। क्षणवारः कालहोरारूपस्तदर्थं वारप्रवृत्तिः। अन्यकार्येषु दिक्शूलादिषु तिथिवारप्रयुक्तेषु नक्षत्रवारप्रयुक्तेषु च योगेषु सुयोगेषु च सूर्योदयादेव वारो ग्राह्यः ॥ ५५ ॥

अथ कालहोराप्रयोजनं शालिन्याह—

**वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेऽस्य ॥ कुर्याद्दिक्छूलादि चिंत्यं क्षणेषु नैवोल्लंघ्यः पारिघश्चापि दंडः ॥ ५६ ॥**

वारे प्रोक्तमिति ॥ यत्कर्म यस्मिन् वारे प्रोक्तं तद्दिनस्य सदोषत्वादत्यावश्यककृत्ये तस्य कालहोरायां कर्त्तव्यम्। नारदः।

"यस्य खेटस्य यत्कर्म वारे प्रोक्तं विधीयते। ग्रहस्य क्षणवारेऽपि तस्य तत्कर्म सर्वदा"। अत्र केचित् यस्य वारे कर्म प्रोक्तं तस्य बलिनो नवांशे सूर्यश्चंद्रो वा चेत्तिष्ठति तदा तत्कर्म कार्यमित्याहुः। उक्तं च "यस्य ग्रहदिने कर्म यत्किंचिदभिधीयते। यस्यांशसंस्थिते चंद्रे सूर्ये वा तद्विधीयते" इति। अथ धिष्ण्ये नक्षत्रे यत्कर्म वस्त्रपरिधानादिकमुक्तं तदत्यावश्यकत्वे अस्य धिष्ण्यस्य स्वामितिथ्यंशके स्वामिनो मुहूर्ते कुर्यात्। नारदः। "यस्मिन्नृक्षे तु यत्कर्म निखिलं कथितं च यत्। तद्दैवत्ये तन्मुहूर्ते कार्यं यात्रादिकं तथा" इति। मुहूर्तस्वामिनो विवाहप्रकरणे वक्ष्यंते। क्षणेषु मुहूर्तेषु दिक्शूलाद्यं दिक्शूलं वारशूलं नक्षत्रशूलं चिंत्यं विचारणीयम्। एवं पारिघो दंडः क्षणेषु मुहूर्तेषु नैवोल्लंघ्यः। "यत्कर्म कथितमृक्षे यस्मिंस्तत्कर्म तत्क्षणे कार्यम्। दिक्शूलादिकमखिलं पारिघदंडादि विज्ञेयम्" इति वसिष्ठोक्तेः॥ ५६॥

अथ मन्वादीन्युगादींश्च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

**मन्वाद्यास्त्रितिथी मधौ तितिरवी ऊर्जे शुचौ दिक्तिथी**
**ज्येष्ठेऽन्त्ये च तिथिस्त्विषे नव तपस्यश्वाः सहस्ये शिवा॥**
**भाद्रेऽग्निश्च सिते त्वमाष्ट नभसः कृष्णे युगाद्याः सिते**
**गोऽग्नी बाहुलराधयोर्मदनदर्शौ भाद्रमाघासिते॥ ५७॥**

**इति श्रीमुहूर्तचिंतामणौ प्रथमं शुभाशुभप्रकरणं समाप्तम्॥**

मन्वाद्या इति॥ सिते शुक्लपक्षे एता मन्वादयः मधौ चैत्रे त्रितिथी तृतीयापूर्णिमे। उर्जे कार्तिके तिथिरवी पूर्णिमाद्वादश्यौ। शुचौ आषाढे दिक्तिथी दशमीपूर्णिमे। ज्येष्ठे अंत्ये फाल्गुने च तिथिः उभयत्र पूर्णिमैव। इषे आश्विने नवमी। तपसि माघे अश्वाः सप्तमी। सहस्ये पौषे शिवा एकादशी। भाद्रपदे अग्निस्तृतीया। तु इति पुनः नभसः श्रावणस्य कृष्णपक्षे अमावास्या अष्टमी। अथ युगाद्याश्चत्वारः। बाहुलराधयोः बाहुलः कार्तिकः

राधो वैशाखस्तयोः शुक्लपक्षे गोऽग्नी नवमीतृतीये युगादी। कार्तिकशुक्लनवमी कृतयुगादिः। वैशाखशुक्लतृतीया त्रेतादिः। भाद्रमाघासितमदनदर्शौ युगादी। मदनस्त्रयोदशी। दर्शोऽमावास्या। भाद्रकृष्णत्रयोदशी कलियुगादिः। अत्र शुक्लादयो मासा ग्राह्याः। "कार्तिके शुक्लनवमी चादिः कृतयुगस्य सा। त्रेतादिर्माधवे शुक्ला तृतीया पुण्यसंमिता। कृष्णपंचदशी माघे द्वापरादिरुदीरिता। कल्पादिः स्यात्कृष्णपक्षे नभस्येव त्रयोदशी" इति नारदोक्तेः॥५७॥

इति श्रीदैवज्ञानंतसुतदैवज्ञरामविरचितायां स्वकृतमुहूर्तचिंतामणिटीकायां प्रमिताक्षरायां शुभाशुभप्रकरणं समाप्तम्॥ १॥

# अथ नक्षत्रप्रकरणम्॥ २॥

अथ नक्षत्रप्रकरणं व्याख्यायते। तत्रादौ नक्षत्रस्वामिनः शार्दूलविक्रीडितेनाह—

**नासत्यांतकवह्निधातृशशभृद्रुद्रादितीज्योरगा**
**ऋक्षेशाः पितरो भगोऽर्यमरवी त्वष्टा समीरः क्रमात्॥**
**शक्राग्नी खलु मित्रइन्द्रनिर्ऋतिक्षीराणि विश्वे विधि-**
**गोंविंदो वसुतोयपाऽजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः॥१॥**

नासत्येति॥ एते नासत्यांतकादयः ऋक्षेशा नक्षत्रेशाः क्रमात्स्युः॥ १॥

अथ ध्रुवनक्षत्राणि तत्कृत्यं चानुष्टुभाह—

**उत्तरात्रयरोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम्॥**
**तत्र स्थिरं बीजगेहशांत्यारामादिसिद्धये॥ २॥**

उत्तरात्रयेति॥ उत्तरात्रयं रोहिणी चैतानि नक्षत्राणि रविवारश्च ध्रुवसंज्ञानि स्थिरसंज्ञानि चेति संज्ञाद्वयम्। एवमुत्तरत्रापि व्याख्येयम्। ध्रुवनक्षत्रेषु स्थिरादिकर्म कार्यम्। आदिग्रहणान्मृदुनक्षत्रोक्तं ग्राह्यम्। वसिष्ठः। "मृदुवृंदे कथितान्यपि स्थिरवृंदे तानि कार्याणि" इति॥ २॥

अथ चरभानि तत्कृत्यं चानुष्टुभाह—

स्वात्यादित्ये श्रुतेस्त्रीणि चंद्रश्चापि चरं चलम् ॥
तस्मिन्गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम् ॥ ३ ॥

स्वात्यादित्य इति ॥ आदिशब्दाल्लघुनक्षत्रोक्तमपि ॥ ३ ॥

अथोग्रनक्षत्राणि चानुष्टुभाह—

पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं कुजस्तथा ॥
तस्मिन्घाताग्निशाठ्यानि विषशस्त्रादि सिध्यति ॥४॥

पूर्वात्रयमिति ॥ आदिशब्दाद्दारुणनक्षत्रोक्तमपि ॥ ४ ॥

अथ मिश्राण्यनुष्टुभाह—

विशाखाग्नेयभे सौम्यो मिश्रं साधारणं स्मृतम् ॥
तत्राग्निकार्यं मिश्रं च वृषोत्सर्गादि सिद्ध्यति ॥ ५ ॥

विशाखेति ॥ आदिग्रहणादुग्रभोक्तमपि ॥ ५ ॥

अथ लघुनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

हस्ताश्विपुष्याभिजितः क्षिप्रं लघु गुरुस्तथा ॥
तस्मिन्पण्यरतिज्ञानं भूषाशिल्पकलादिकम् ॥ ६ ॥

हस्तेति ॥ शिल्पं वर्धकिकृत्यादि । कला नृत्यादिकाश्चतुःषष्टिः । आदिशब्दाच्चरभोक्तमपि ॥ ६ ॥

अथ मृदुनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

मृगांत्यचित्रा मित्रर्क्षं मृदु मैत्रं भृगुस्तथा ॥
तत्र गीतांबरक्रीडामित्रकार्यविभूषणम् ॥ ७ ॥

मृगांत्येति ॥ ७ ॥

अथ तीक्ष्णभान्यनुष्टुभाह—

मूलेंद्रार्द्राहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारुणसंज्ञकम् ॥
तत्राभिचारघातोग्रभेदाः पशुदमादिकम् ॥ ८ ॥

मूलेति ॥ अभिचारः कर्मणो भयंकरकृत्यं मारणादि । पशुदमः पशुशिक्षा । आदिशब्दाद्बंधनादिकं स्थिरं च ॥ ८ ॥

अथाधोमुखोर्ध्वमुखतिर्यङ्मुखनक्षत्राणींद्रवज्रयाह—

**मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुखं भवेदूर्ध्वास्यमार्द्रेज्यहरित्रयं ध्रुवम् ॥ तिर्यङ्मुखं मैत्रकरानिलादितिज्येष्ठाश्विभानीदृशकृत्यमेषु सत् ॥ ९ ॥**

मूलाहीति ॥ मूलं अहिराश्लेषा मिश्रं कृत्तिकाविशाखे उग्रं पूर्वात्रयमघाभरण्यः एतानि नव भानि अधोमुखानि ज्ञेयानि । आर्द्रा पुष्यः श्रवणत्रयं रोहिण्युत्तरात्रयं च नव भान्यूर्ध्वमुखानि । मैत्राणि चित्रारेवत्यनुराधाः हस्तस्वातीपुनर्वसुज्येष्ठा एतानि नव भानि तिर्यङ्मुखानि । एषु अधोमुखोर्ध्वमुखतिर्यङ्मुखेषु भेषु ईदृशं कृत्यमधोमुखोर्ध्वमुखतिर्यङ्मुखकृत्यं सत् भवति । गरुडपुराणे । " भरणीकृत्तिकाश्लेषामघामूलविशाखिकाः । तिस्रः पूर्वास्तथा चैव अधोवक्त्राः प्रकीर्तिताः । एषु वापीतडागादिकूपभूमितृणानि च । देवागारस्य खननं निधानखननं तथा । गणितं ज्योतिषारंभं खनीबिलप्रवेशनम् । कुर्यादधोगतान्येव कार्याणि वृषभध्वज । रोहिण्यार्द्रा तथा पुष्यो धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् । वारुणं श्रवणं चैव नव चोर्ध्वमुखास्तथा । एषु राज्याभिषेकं च पट्टबंधं च कारयेत् । ऊर्ध्वमुखान्युच्छ्रितानि सर्वाण्येषु च कारयेत् । रेवती चाश्विनी चित्रा स्वाती हस्तः पुनर्वसुः । अनुराधा मृगो ज्येष्ठा एताः पार्श्वमुखाः स्मृताः । गजोष्ट्राश्वबलीवर्ददमनं माहिषस्य च ॥ बीजानां वपनं कुर्याद्गमनागमनादिकम् । चक्रयंत्ररथादीनां नौकादीनां प्रवाहणम् । पार्श्वेषु यानि कार्याणि कुर्यादेषु च तान्यपि " । इदं च नक्षत्रविशेषविहितानां कर्मणामवश्यकर्त्तव्यत्वे मुहूर्त्तालब्धौ सत्यां कर्मणोऽधोमुखाद्याकारं ज्ञात्वा तत्तन्नक्षत्रेषु तानि कर्माणि कार्याणि । यानि च सर्वथा नोक्तानि बिलप्रवेशादीनि तान्येष्वेव नक्षत्रेषु कार्याणीत्येतदर्थमुक्तम् ॥ ९ ॥

अथ प्रवालादिधारणमुहूर्त्तं वसंततिलकयाह––

**पौष्णध्रुवाश्विकरपंचकवासवेज्यादित्ये प्रवालरदशं-**
**खसुवर्णवस्त्रम् ॥ धार्यं विरिक्तशनिचन्द्रकुजेऽह्नि**
**रक्तं भौमे ध्रुवादितियुगे सुभगा न दध्यात् ॥ १० ॥**

पौष्णध्रुवेति ॥ रेवत्यादिनक्षत्रेषु तथा रिक्तातिथिशनिचंद्रभौमवर्जितेऽह्नि दिवसे प्रवालं विद्रुमं शंखः शंखवलयादिः वस्त्रं श्वेतम् एतानि धार्याणि । रक्तं मंजिष्ठादिरंगेन रंजितं वस्त्रं भौमवारेऽपि धार्यम् । अथ सुभगा सभर्तृका ध्रुवादितियुगे रोहिण्युत्तरात्रयेषु । अदितियुगे पुनर्वसौ पुष्ये च प्रवालादिकं न दध्यात् । क्वचिच्छततारायां स्नानमपि निषिद्धम् । उक्तं च । " रोहिणीगुरुपुनर्वसूत्तरे या विभर्त्ति नववस्त्रभूषणम् । सा न योषिदवलंबते पतिं स्नानमाचरति वारुणेऽपि या " इति ॥ १० ॥

अथ नवधा विभक्तस्य वस्त्रस्य दग्धादिदोषे शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह––

**वस्त्राणां नवभागकेषु च चतुष्कोणेऽमरा राक्षसा**
**मध्यत्र्यंशगता नरास्तु सदशे पाशे च मध्यांशयोः ॥**
**दग्धे वा स्फुटितेऽम्बरे नवतरे पंकादिलिप्ते न स-**
**द्रक्षोंऽशे नृसुरांशयोः शुभमसत्सर्वांशके प्रांततः ११॥**

वस्त्राणामिति ॥ वस्त्राणां नव भागाः कार्याः । कोणचतुष्टये अमरा देवाः स्थाप्याः । राक्षसा मध्यगतांशत्रयगता ज्ञेयाः । नराः दशासहिते पाशे च पुनर्मध्ययोरंशयोर्ज्ञेयाः । तत्र चेद्रक्षोंऽशे नवतरे नूतने वस्त्रे दैवाद्दग्धे अग्निस्पृष्टे स्फुटिते पाषाणाद्याघातादिभिर्निहते पंकेन कर्दमेन आदिशब्दाद्गोमयादिभिर्लिप्ते उपहते सति तद्वस्त्रं न सत् शुभफलजनकं न भवतीत्यर्थः । नृसुरांशयोः एवं वस्त्रदाहादिके सति शुभं कल्याणं स्यात् । अथ सर्वांशके राक्षसमनुष्यदेवां-

शकेषु प्रांततः प्रांतभागे असदनिष्टफलजनकम्। इदं सर्वं शय्यासनपादुकास्वपि ज्ञेयम्। श्रीपतिः। "कज्जलकर्दमगोमयलिप्ते वाससि दग्धवति स्फुटिते च। चिंत्यमिदं नवधा विहितेऽस्मिन्निष्टमनिष्टफलं च सुधीभिः"। अत्र राक्षसांशे ध्वजच्छत्रादिसदृशी च्छेदाकृतिः शुभफला ज्ञेया। देवमनुष्यांशेऽपि काकोलूकसदृशी छेदाकृतिरशुभफलदा। कश्यपः। "शंखवज्रांबुजच्छत्रध्वजतोरणसन्निभा। श्रीवत्ससर्वतोभद्रनंद्यावर्त्तगृहोपमा। वर्धमानस्वस्तिकेभमृगकूर्मझषाकृतिः। छेदाकृतिर्दैत्यभागेऽप्यायुरर्थप्रदा नृणाम्। खरोष्ट्रोलूककाकाहिजंबुकश्ववृकोपमाः। त्रिकोणसूर्याकृतयो देवभागेऽप्यशोभनाः। निंदितं वसनं दद्याद्द्विजेभ्यः स्वर्णसंयुतम्। आशिषो वाचनं कृत्वा त्वन्यद्वस्त्रं च धारयेत्" इति॥ ११॥

अत्र क्वचिद्दुष्टदिनेऽपि वस्त्रपरिधानमनुष्टुभाह—

विप्राज्ञया तथोद्वाहे राज्ञा प्रीत्यार्पितं च यत्॥
निंद्येऽपि धिष्ण्ये वारादौ वस्त्रं धार्यं जगुर्बुधाः॥१२॥

विप्राज्ञयेति॥ धिष्ण्ये नक्षत्रे वारादौ वारतिथियोगादौ व्यतीपातभद्रादिदुष्टयोगैर्निंद्येऽपि यद्वस्त्रं ब्राह्मणानुज्ञया तथोद्वाहे राज्ञा प्रीत्या संतोषेणार्पितं दत्तं तद्वस्त्रं धार्यमिति बुधा जगुः॥ १२॥

अथ लतापादपारोपणराजदर्शनमद्यगोक्रयविक्रयमुहूर्ताञ्छार्दूलविक्रीडितेनाह—

राधामूलमृदुध्रुवर्क्षवरुणक्षिप्रैर्लतापादपारो-
पोऽथो नृपदर्शनं ध्रुवमृदुक्षिप्रश्रवोवासवैः॥
तीक्ष्णोग्राम्बुपभेषु मद्यमुदितं क्षिप्रांत्यवह्नींद्रभा-
दित्येंद्राम्बुपवासवेषु हि गवां शस्तः क्रयो विक्रयः १३

राधामूलेति॥ राधा विशाखा एतदादिचतुर्दशनक्षत्रैर्लतानां वल्लीनां पादपानां वृक्षाणां चारोपो वापः कार्यः। अथ राजदर्शनं ध्रुवमृदुक्षिप्रश्रवोवासवैस्त्रयोदशभैः कार्यम्। अथ मद्यं मद्यारंभस्तीक्ष्णोग्रां-

त्रुपभेषु नवनक्षत्रेषु उदितः कथितः। अथ गवां क्रयो मूल्येन परस्माद्ग्रहणम्। विक्रयो मूल्यग्रहणपूर्वकं दानम्। क्षिप्रांत्यवह्नींद्रभादित्येंद्रांबुपवासवेषु हि नवनक्षत्रेषु शस्तः प्रशस्तः। अत्र भीमपराक्रमेण पंचदश भान्यभिहितानि। "हस्तेऽनुराधात्रितये सर्पौष्णे मृगे च पूर्वाश्विविशाखभेषु। पुष्ये धनिष्ठाद्वितये दितीशे गवां क्रयं विक्रयमामनंति ॥ १३ ॥

अथ पशूनां रक्षामुहूर्त्तं स्थितिनिवेशनिषेधमुहूर्तं चेंद्रवंशयाह--

**लग्ने शुभे चाष्टमशुद्धिसंयुते रक्षा पशूनां निजयो-**
**निभे चरे ॥ रिक्ताष्टमीदर्शकुजश्रवोध्रुवत्वाष्ट्रेषु-**
**यानं स्थितिवेशनं न सत् ॥ १४ ॥**

लग्ने शुभे इति ॥ शुभस्वामिके लग्ने अष्टमशुद्धिसंयुते शुभपापाक्रांताष्टमभावरहिते सति पशूनां रक्षा रक्षणं प्रवेशादिकं च सत्। तथा स्वीययोनिनक्षत्रे चरभे च सत्। यथाऽश्वानां योनिभमश्विनीशततारके तत्र चतुष्पदानां रक्षा शस्ता। "तीक्ष्णे पशूनां दमनं चरे स्यात्पशुपोषणम्" इति वचनात्। अथ रिक्ता ४। ९। १४ अष्टमी ८ दर्शोऽमावास्या कुजो भौमः श्रवः श्रवणः ध्रुवाण्युत्तरात्रयरोहिण्यः त्वाष्ट्रं चित्रा एषु पशूनां यानं गृहाद्बहिर्निःसारणं स्थितिर्गोष्ठादिवेशनं न सच्छुभं न। व्यवहारोच्चये। "पूर्वात्रये धनिष्ठेंद्रपौष्णे सौम्यविशाखयोः। आश्लेषायां मघाश्विन्यां यात्रासिद्धिश्चतुष्पदाम्" इति ॥ १४ ॥

अथौषधसूच्योर्मुहूर्तं मंदाक्रांतयाह—

**भैषज्यं सल्लघुमृदुचरे मूलभे द्व्यंगलग्ने शुक्रें-**
**द्वीज्ये विदि च दिवसे चापि तेषां रवेश्च ॥**
**शुद्धे रिःफद्युनमृतिगृहे सत्तिथौ नो जनेर्भे सूची-**
**कर्माप्यदितिवसुभत्वाष्ट्रमित्राश्विपुष्ये ॥ १५ ॥**

भैषज्यं सदिति ॥ भैषज्यमौषधं प्रारब्धं भक्षितं च सत्। लघुमृदुचरनक्षत्रे मूले च द्व्यंगलग्ने द्विस्वभावराशिषु मिथुनकन्याधनुर्मीनेषु लग्नगतेषु सत्सु शुक्रेंद्वीज्यबुधेषु द्विस्वभावलग्नस्थेषु सत्सु च पुनस्तेषां शुक्रेंद्वीज्यबुधानां रवेश्च दिवसे वारे सत्तिथौ रिक्तामारहिततिथौ भैषज्यं सत् शुभं स्यात्। दीपिकायाम्। "द्व्यंगोदये गुरुबुधेंदुसितेषु तेषां वारे रवेश्च सुविधौ सुतिथौ सुयोगे। भेषूग्रपन्नगविशाखशिवेतरेषु जन्मर्क्षविष्टिरहितेषु कृतः शुभाय" इति। अथ रिःफद्यूनमृतिगृहे लग्नात् द्वादशसप्तमाष्टमगृहेषु शुद्धेषु शुभपापग्रहरहितेषु सत्सु औषधं तु वर्षफलप्रश्नादिना आयुर्निश्चये च सत् "द्यूनशत्रुनिधनंव्ययशुद्धौ सद्गृहेषु नितरां बलवत्सु। आयुषश्च हितकारिणि योगे कीर्तिता नियतमौषधसेवा" इति श्रीपतिभट्टोक्तेः। अथ जनेर्भे जन्मनक्षत्रे नो भेषज्यं सत्। "जन्मनक्षत्रगश्चंद्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु। क्षौरभेषजवादाध्वकर्तनेषु विवर्जयेत्" इति वचनात्। अथ सूचीकर्म सूच्याः संबंधि कर्म घटनसीवनादि अदितिवसुभत्वाष्ट्रमित्राश्विपुष्यनक्षत्रे सत् स्यात्। व्यवहारोच्चये। "आदितिर्वासवं त्वाष्ट्रमैत्रभैंदववाजिनः। सूचीकर्म तनुत्राणभेभिर्ऋक्षैः प्रशस्यते" इति ॥ १५ ॥

अथान्यदनुष्टुभाह—

**क्रयर्क्षे विक्रयो नेष्टो विक्रयर्क्षे क्रयोऽपि न ॥**
**पौष्णांबुपाश्विनीवातश्रवश्चित्राः क्रये शुभाः ॥ १६ ॥**

क्रयर्क्ष इति ॥ क्रयर्क्षे वक्ष्यमाणक्रयनक्षत्रे विक्रयो न कार्यः। तथा विक्रयनक्षत्रे क्रयोऽपि न कार्यः। दीपिकायाम्। "यमाहिशक्राग्निविशाखपूर्वा नेष्टाः क्रये विक्रयणेऽतिशस्ताः। पौष्णाश्विचित्रामृतविष्णुवाताः शस्ता क्रये विक्रयणे निषिद्धाः" इति। ननु यदा येन क्रयः कर्तव्यस्तदाऽन्येन विक्रयः कर्तव्यः। तत्र क्रयविक्रयनक्षत्राणां महाभेदादुभयविधमुहूर्त्तानुपपत्तिः। उच्यते। विक्रेत्रा यदा मुहूर्त्ते विक्रयार्थं गृह्यते तदा वस्तु पृथक् क्रियते तत्कर्म विक्रयशब्द-

वाच्यम्। यदा क्रयिणा क्रयार्थं मुहूर्तः प्रार्थ्यते तदा विक्रेत्रे मूल्य-द्रव्यं दत्त्वा पृथक्कृतं विक्रेतृवस्तु ग्राह्यम् । तत्क्रयशब्दवाच्यमिति मत्वा यथाकथंचित्समाधेयम् । तत्र क्रयमुहूर्त्तः । रेवतीशततारा अश्विनीस्वातीश्रवणाचित्रा एतानि भानि क्रये शुभानि विक्रये निषिद्धानि च ॥ १६ ॥

अथ विक्रयविपण्योर्मुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

पूर्वाद्वीशकृशानुसार्पयमभे केंद्रत्रिकोणे शुभैः
षट्त्र्यायेष्वशुभैर्विना घटतनुं सन्विक्रयः सत्तिथौ ॥
रिक्ताभौमघटान्विना च विपणिर्मैत्रध्रुवक्षिप्रभै-
र्लग्नेचंद्रसिते व्ययाष्टरहितैः पापैः शुभैर्द्व्यायखे १७॥

पूर्वाद्वीशेति ॥ द्वीशं विशाखा। पूर्वादिनक्षत्रेषु केन्द्रेषु प्रथमचतुर्थसप्तमदशमेषु द्वितीये कोणे नव पंचमे शुभैः सद्भिः षट्त्र्यायेषु पापग्रहैः सद्भिः घटतनुं कुंभलग्नं विना त्यक्त्वा सत्तिथौ रिक्तामारहिततिथौ विक्रयः सन् शुभो ज्ञेयः । अथ विपणिः पण्यवीथिका गृहेस्थित्वा क्रयाख्यं कर्म रिक्तातिथिभौमवारकुंभलग्नानि वर्जयित्वाऽन्येषु तिथिवारलग्नेषु मित्राणि मृगरेवतीचित्रानुराधाः ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयं क्षिप्राणि हस्ताश्विपुष्याः एतैर्भैः लग्ने चंद्रे सिते मूर्तौ चंद्रे सिते च सति व्ययाष्टरहितैः पापग्रहैः सद्भिः शुभैर्द्व्यायखे द्वितीयैकादशदशमेषु सद्भिर्विपणिः शुभा स्यात् ॥ १७ ॥

अथाश्वगजमुहूर्तमिंद्रवज्रयाह—

क्षिप्रांत्यवस्विंदुमरुज्जलेशादित्येष्वरिक्तारदिने प्रशस्तम् ॥ स्याद्वाजिकृत्यं त्वथ हस्तिकार्यं कुर्यान्मृदुक्षिप्रचरेषु विद्वान् ॥ १८ ॥

क्षिप्रांत्येति ॥ क्षिप्रादिनक्षत्रेषु रिक्ताभौमव्यतिरिक्तादिने वाजिकृत्यमश्वानां क्रयविक्रयशिक्षास्थानाभरणादि कार्यं प्रशस्तं स्यात् ।

श्रीपतिः । "पुष्यश्रविष्ठाश्विनिसौम्यभेषु पौष्णानिलादित्यकराह्वयेषु । सवारुणर्क्षेषु बुधैः स्मृतानि सर्वाणि कार्याणि तुरंगमाणाम्"। अश्वारोहणे चक्रम्। "अश्वाकारं लिखेच्चक्रं साभिजिद्भानि विन्यसेत्। स्कंधे तु सूर्यभात्पंच पृष्ठे च दश भानि च । पुच्छे द्वे स्थापयेत्प्राज्ञश्चतुष्पादे चतुष्टयम् । उदरे विन्यसेत्पंच मुखे द्वे तुरगस्य च । अर्थलाभो मुखे सम्यग्वाजी नश्यति चोदरे । चरणस्थे रणे भंगः पुच्छे पत्नी विनश्यति। अर्थसिद्धिर्भवेत्पृष्ठे स्कन्धे स्कन्धपतिर्भवेत्" इति । अथ विद्वाञ्ज्ञाता मृदुक्षिप्रचरनक्षत्रेषु रिक्तामाभौमवर्जितदिने च हस्तिकृत्यं गजानां कार्यं क्रयविक्रयभूषादि कुर्यात् । वसिष्ठः । " हस्तत्रये सौम्यहरित्रये च पौष्णद्वये पुष्यपुनर्वसौ च । मैत्रे च सर्वाण्यपि कुंजराणां कर्माणि शस्तान्यखिलानि यानि" इति ॥१८॥

अथ भूषणघटनमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

**स्याद्भूषाघटनं त्रिपुष्करचरक्षिप्रध्रुवेरत्नयुक्-**
**तत्तीक्ष्णोग्रविहीनभे रविकुजे मेषालिसिंहे तनौ ॥**
**तन्मुक्तासहितं चरध्रुवमृदुक्षिप्रे शुभे सत्तनौ**
**तीक्ष्णोग्राश्विमृगे द्विदैवदहने शस्त्रं शुभं घट्टितम् १९**

स्याद्भूषेति ॥ त्रिपुष्करदिनलक्षणं भद्रातिथी रविजेत्यादिना वक्ष्यति। एवंविधे त्रिपुष्करदिने चरक्षिप्रध्रुवनक्षत्रेषु भूषाघटनमाभरणघटनं शुभं स्यात्। वसिष्ठः । "क्षिप्राचलचरऋक्षे रिक्तामावर्जितेषु दिवसेषु । निखिलेष्वपि वारेष्वपि त्रिपुष्करे भूषणं कार्यम् "। अथ तद्भूषणं रत्नयुतं माणिक्यादियुतं चेत्तदा तीक्ष्णोग्रविहीनभे तीक्ष्णानि मूलज्येष्ठार्द्राश्लेषाख्यानि उग्राणि पूर्वात्रयमघाभरण्यः एतद्व्यतिरिक्तेष्वष्टादशनक्षत्रेषु तथा रविभौमवारेऽपि कार्यम् । तथा मेषवृश्चिकसिंहलग्नेषु च । वसिष्ठः । " स्थिरसाधारणचरभे लघुमैत्रेष्वर्ककुजवारे । तेषामेव विलग्ने माणिक्यमयं भूषणं कार्यम्" इति । अथ चरध्रुवमृदुक्षिप्रसंज्ञकेषु नक्षत्रेषु तद्भूषाघटनं मुक्तासहितं

शुभं भवति। मुक्ताग्रहणं रजतादेरुपलक्षणम्। अत्र चंद्रशुक्रयोर्वारे। कर्कवृषतुलालग्नेषु कार्यमित्यपि ज्ञेयम्। वसिष्ठः। "क्षिप्रमृदुध्रुवचरभे शशिसितयोर्वासरेषु तल्लग्ने। मुक्ताफलरजतमयं भूषणमखिलं सवज्रकं कार्यम्"। अथ तीक्ष्णानि मूलज्येष्ठार्द्राश्लेषाः उग्राणि च पूर्वात्रयभरणीमघाः अश्विनीमृगौ द्विदैवं विशाखा दहनः कृत्तिका एषु नक्षत्रेषु घट्टितं शस्त्रं शुभं स्यात्। "अदितिर्वासवं त्वाष्ट्रमैत्रमैंदववाजिनः। सूचीकर्म तनुत्राणमेभिर्ऋक्षैः प्रशस्यते" इति ऋक्षोच्चयोक्तेः। अथ सुवर्णरूप्यादिपात्रे भोजनमुहूर्त्तमाह वसिष्ठः। "लघुमैत्रध्रुवचरभे सितेंदुबुधजीववारेषु। हेमरजतादिभाजनभोजनमारोग्यममृतयोगेषु" ॥ १९ ॥

अथ मुद्रापातनमुहूर्त्तं वस्त्रक्षालनमुहूर्त्तं च स्रग्धरयाह—

**मुद्राणां पातनं सद्ध्रुवमृदुचरभक्षिप्रभैर्वींदुसौरे। वस्त्रे पूर्णाजयाख्ये नच गुरुभृगुजास्ते विलग्ने शुभैः स्यात्॥ वस्त्राणां क्षालनं सद्वसुहयदिनकृत्पंचकादित्यपुष्ये नो रिक्तापर्वषष्ठीपितृदिनरविजज्ञेषु कार्यं कदापि॥२०॥**

मुद्राणामिति॥ध्रुवमृदुचरक्षिप्रसंज्ञकैर्नक्षत्रैः कृत्वा राजमुद्राङ्कितसुवर्णरूप्यादेर्निष्पादनं मुद्रापातनमित्युच्यते। टांकसाळेति भाषया। वींदुसौरे वस्ते चंद्रशनैश्चरवर्जितवारे। तथा पूर्णाजयाख्ये पूर्णाः पंचमीदशमीपूर्णिमाः जयास्तृतीयाष्टमीत्रयोदश्यः एतासु तिथिष्वित्यर्थः। सत् शुभं स्यात्। तथा गुरुशुक्रास्ते न शुभम्। विलग्ने शुभैः लग्ने शुभग्रहैः। सद्भिरित्यर्थः। उक्तं च। मृदुध्रुवाक्षिप्रचरेषु भेषु योगे प्रशस्ते शनिचंद्रवर्ज्ये। वारे तिथौ पूर्णजयाह्वये च मुद्राप्रतिष्ठा शुभदा नराणाम्। गुर्वस्ते वा सितास्ते वा मुद्राणां घटनं क्वचित्। क्रूरग्रहर्क्षांशलग्ने न कार्यं भूतिमिच्छता"। अथ वसुर्धनिष्ठा। हयोऽश्विनी दिनकृत् हस्तः तस्मात्पंचके हस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधासु। आदित्यं पुनर्वसुः। पुष्यः एषु वस्त्राणां क्षालनं रजकाय

धावनार्थं दानं सत् शुभं स्यात् । रिक्तापर्वाणि पूर्वोक्तानि तिथिप्रकरणे । षष्ठी पितृदिनं श्राद्धदिनं एतेषु रविजज्ञेषु शनिबुधवारेषु कदापि वस्त्रक्षालनं नो कार्यम् ॥ २० ॥

अथ खड्गादिधारणं शय्याद्युपभोगमुहूर्तं च स्रग्धरयाह—

संधार्याः कुंतवर्मेष्वसनशरकृपाणासिपुत्र्यो विरिक्ते
शुक्रेज्यार्केऽह्नि मैत्रध्रुवलघुसहितादित्यशाक्रद्विदैवे ॥
स्युर्लग्नेऽपि स्थिराख्ये शशिनि च शुभदृष्टे शुभैः केंद्रगैः
स्याद्भोगः शय्यासनादेर्ध्रुवमृदुलघुहर्यंतकादित्य इष्टः ॥

संधार्या इति ॥ विरिक्ते रिक्तावर्जिते शुक्रबृहस्पतिरविवारे तथा मैत्रध्रुवलघुसंज्ञकनक्षत्रसहितपुनर्वसुज्येष्ठाविशाखानक्षत्रेषु कुंतादयः संधार्याः । कुंतो भल्लः । वर्म कवचम् । इषवो बाणाः अस्यंते अनेनेतीष्वसनं धनुः । शरो बाणः । कृपाणः खड्गः । असिपुत्री छुरिका सन्नाहोऽपीति केचित् । तथा स्थिराख्ये वृषसिंहवृश्चिककुंभाख्ये लग्ने चंद्रे अपिशब्दात् लग्नेऽपि शुभग्रहदृष्टे शुभैः केंद्रगैः सद्भिः कुंतादिधारणं हितम् । ऋक्षोच्चये । "पुष्ये चादितिचित्रपन्नतनये शक्रोत्तरारेवतीवाजीहस्तविशाखमित्रसहिते भानौ गुरौ भार्गवे । कुंभे कीटगृहे वृषे मृगपतौ चंद्रे शुभैर्वीक्षिते सन्नाहः शरखड्गकुंतछुरिका धार्या नृपाणां हिता" इति । यत्तु दीपिकायाम् । "मूलेंदुपूर्वात्रययाम्यपित्र्यशक्राश्विसार्पानलशूलिनश्च । शस्त्रादिसंधारणमेषु कुर्यात्तिथौ विलग्ने च शुभे शुभाहे" इति तदासन्नयुद्धादिविषयम् । अथ ध्रुवमृदुलघुनक्षत्रेषु हरौ श्रवणे अंतके भरण्याम् आदित्ये पुनर्वसौ एषु शय्यासनादेः शय्या खट्वादिरूपा आसनं पीठमृगत्वगादि । आदिशब्दात्पादुका । तेषामुपभोग इष्टो हितः । दीपिकायाम् "मैत्रेंदुपुष्ययमभादितिवाजिचित्राहस्तोत्तरात्रयहरीज्यविधातृभानि । एतेष्वतीव शयनासनपादुकानां संभोगकार्यमुदितं मुनिभिः शुभाहे" इति ॥ २१ ॥

अथांधादिनक्षत्राणि शार्दूलविक्रीडितेनाह—

**अंधाक्षं वसुपुष्यधातृजलभद्वीशार्यमांत्याभिधं**
**मंदाक्षं रविविश्वमैत्रजलपाश्लेषाश्विचांद्रं भवेत् ॥**
**मध्याक्षं शिवपित्रजैकचरणत्वाष्ट्रेंद्रविध्यंतकं**
**स्वक्षं स्वात्यदितिश्रवोदहनभाहिर्बुध्न्यरक्षोभगम् २२॥**

अंधाक्षमिति ॥ धाता रोहिणी । विधिरभिजित् । दहनभं कृत्तिका । भगः पूर्वाफाल्गुनी । अन्यत्स्पष्टम् ॥ २२ ॥

अंधादिनक्षत्राणां फलमनुष्टुभाह—

**विनष्टार्थस्य लाभोंऽधे शीघ्रं मंदे प्रयत्नतः ॥**
**स्याद्दूरे श्रवणं मध्ये श्रुत्याप्ती न सुलोचने ॥२३ ॥**

विनष्टार्थस्येति ॥ अंधनक्षत्रेषु विनष्टस्यापहृतस्यार्थस्य लाभः शीघ्रं भवति । मंदनक्षत्रेषु विनष्टार्थस्य प्रयत्नतो लाभो भवति । मध्ये मध्यनक्षत्रे विनष्टार्थस्य दूरं स्वनगरादतीव दूरदेशे श्रवणम् । त्वदीयद्रव्यमसुकेन हृतमसुकस्थले तिष्ठतीति लोकवार्त्ता भवति । लब्धिस्तु नास्ति । सुलोचननक्षत्रेषु श्रुत्याप्ती न श्रवणमपि लब्धिरपि न भवतीत्यर्थः ॥ २३ ॥

अथ धनप्रयोगे निषिद्धनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

**तीक्ष्णमिश्रध्रुवोग्रैर्यद्द्रव्यं दत्तं निवेशितम् ॥**
**प्रयुक्तं च विनष्टं च विष्ट्यां पाते न चाप्यते ॥ २४॥**

तीक्ष्णेति ॥ एतैस्तीक्ष्णादिनक्षत्रैर्यद्द्रव्यं सुवर्णादि दत्तं कालांतरं विना दत्तं न स्वसत्तापरित्यागेन निवेशितं स्वेष्टसमीपे प्रत्ययार्थं स्थापितं प्रयुक्तं कालांतररीतिपुरःसरं कस्मैचिद्दत्तम् । विनष्टं चौरादिना हृतं स्वयमेव वा क्वचित्त्यक्तं यद्द्रव्यं तद्द्रव्यं निश्चयेन कदापि नाप्यते । तथा विष्ट्यां भद्रायां पाते व्यतीपाते महापाते वा हृतं द्रव्यं नाप्यते । चकारात् ग्रहणेऽपि । वसिष्ठः । "ध्रुवोग्रसाधारणदारुणर्क्षे

निक्षिप्तमर्थं त्वथवा प्रनष्टम् । चौरैर्हृतं दत्तमुपप्लवे वा विष्ट्यां च पाते न च लभ्यते तत् " इति । अत्रेदमनुसंधेयम् । तीक्ष्णमिश्रादिपंचदशभेषु मध्ये रोहिण्यर्यमविश्वजलभद्वीशेषु दत्तनिवेशितप्रयुक्तद्रव्यस्यैवाप्राप्तिः । चौरापहृतस्य स्वतो गतस्य वा धनस्य लाभ एव । तेषां रोहिण्यादीनां मध्यलोचनभेषु पाठसामर्थ्यादिति भावः ॥ २४ ॥

अथ जलाशयखनननृत्यारंभयोर्मुहूर्त्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह--

मित्रार्कध्रुववासवांबुपमघातोयांत्यपुष्येंदुभिः
पापैर्हीनबलैस्तनौ सुरगुरौ ज्ञे वा भृगौ खे विधौ ॥
आप्ये सर्वजलाशयस्य खननं व्यंभोमघैः सेंद्रभैस्तै-
र्नृत्यं हिबुके शुभैस्तनुगृहे ज्ञेऽब्जे ज्ञराशौ शुभम्२५

मित्रार्केति ॥ अनुराधादित्रयोदशनक्षत्रैः सद्भिः पापग्रहैर्हीनबलैर्बलरहितैः सद्भिः तनौ लग्ने सुरगुरौ सति बुधे वा सति खे दशमे भृगौ शुक्रे सति आप्ये जलराशौ विधौ सति सर्वतोयाशयानां वापीकूपतडागादीनां तोयाधाराणां खननं हितं स्यात् । "आप्यांबुपांत्यपितृमित्रवसूत्तरार्केंद्वीज्यभेषु खननं सलिलाशयानाम्"इतिव्यवहारतत्त्वोक्तेः श्रीपतिः । "लग्ने जीवे ज्ञेऽथ वा दुर्बलैश्च क्रूरैः शुक्रे वापि मेषूरणस्थे । आप्ये चंद्रे सर्वतोयाशयानामारंभाः स्युः सिद्धये निर्विकल्पम् " इति । अथ नृत्यारंभः तैः प्रागुक्तैर्नक्षत्रैर्व्यंभोमघैः पूर्वाषाढामघारहितैः सेंद्रभैर्ज्येष्ठासहितैः मित्रार्कध्रुववासवांबुपांत्यपुष्येंदुज्येष्ठनक्षत्रैर्नृत्यारंभः शुभः स्यात् । शुभैर्हिबुके चतुर्थस्थाने लग्ने ज्ञे सति । अब्जे चंद्रे ज्ञराशौ मिथुनकन्यास्थे सतीत्यर्थः॥२५॥

अथ सेवकस्य स्वामिसेवायां मुहूर्त्तं शालिन्याह—

क्षिप्रे मैत्रे वित्सितार्केज्यवारे सौम्ये लग्नेऽर्के कुजे वा
खलाभे ॥ योनेर्मैत्र्यां राशिपोश्चापि मैत्र्यां सेवा
कार्या स्वामिनः सेवकेन ॥ २६ ॥

क्षिप्र इति ॥ क्षिप्राणि हस्ताभिजिदश्विपुष्याः मैत्राणि मृगरेवतीचित्रानुराधाः एतेषु नक्षत्रेषु बुधशुक्रसूर्यगुरुवारे सौम्ये शुभग्रहे लग्नगे सति अर्के भौमे वा खलभे दशभे एकादशे च स्थिते सति सेवकेन स्वामिनः सेवा कार्या । तत्र स्वामिसेवकनक्षत्रयोन्योर्मैत्र्यां च पुनः राशिपोः सेव्यसेवकयो राशिस्वामिनोर्मैत्र्यां प्रीतौ सत्यां सेवा कार्या अन्यथा न कार्या॥ २६ ॥

अथ द्रव्यप्रयोगऋणग्रहणमुहूर्त्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह——

**स्वात्यादित्यमृदुद्विदैवगुरुभे कर्णत्रयाश्वे चरे**
**लग्ने धर्मसुताष्टशुद्धिसहिते द्रव्यप्रयोगः शुभः ॥**
**नारे ग्राह्यमृणं तु संक्रमदिने वृद्धौ करेऽर्केह्नि य-**
**त्तद्वंशेषु भवेदृणं न च बुधे देयं कदाचिद्धनम् ॥२७॥**

स्वात्यादित्येति ॥ स्वात्याद्येकादशनक्षत्रेषु चरे मेषकर्कतुलामकराणामन्यतमे लग्ने धर्मे नवमं सुतः पंचमम् अष्टमम् एतेषां शुद्धिः नवपंचमयोः पापग्रहराहित्यम् अष्टमे तु शुभपापराहित्यमेवंरूपा शुद्धिस्तया सहिते लग्ने द्रव्यप्रयोगः ऋणदानं शुभं स्यात् । भीमपराक्रमे । " मृदुपुष्याश्विनी चैव विशाखा श्रवणत्रयम् । पुनर्वसौ च शंसंति धनादिनिधिवर्तनम् " । वर्त्तनं ऋणादिरूपेण दानम् । मिश्रनक्षत्रत्वाद्विशाखायां निषेधे प्राप्ते ऋणदाने एव विधिः हृते नष्टादौ निषिद्धैव । शुद्धेषु धर्मात्मजनैधनेषु चरे विलग्ने द्रविणप्रयोग इति । अथारे भौमवारे ऋणं न ग्राह्यम् । ऋणं भौमे न गृह्णीयान्न देयं बुधवासरे । ऋणच्छेदं कुजे कुर्यात्संचयं सोमनंदने ।अथ तुर्विशेषे संक्रमदिने संक्रांतिदिवसे वृद्धौ वृद्धियोगे करे हस्तनक्षत्रे अर्केऽह्नि रविवारे इति यावत् । तत्रापि न ग्राह्यमित्येवं संबंधः । यद्यस्माद्धेतोस्तदृणं तद्वंशेषु ऋणग्रहीतुः कुलेषु भवेत् । तत्पुत्रपौत्रादिभिरपि परिहर्त्तुमशक्यमित्यर्थः । " हस्तेऽर्कवारे संक्रांतौ यदृणं स्यात्कुलेषु तत् । वृद्धियोगे तथा ज्ञेयमृणच्छेदं तु कारयेत् " इति ज्योतिष्प्रकाशोक्तेः । बुधवारे ऋणं कदापि न देयम् ॥ २७ ॥

अथ हलप्रवाहमुहूर्त्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मूलद्वीशमघाचरध्रुवमृदुक्षिप्रैर्विनार्कं शनिं
पापैर्हीनबलैर्विधौ जललवे शुक्रे विधौ मांसले ॥
लग्ने देवगुरौ हलप्रवहणं शस्तं न सिंहे घटे
कर्काजैणधटे तनौ क्षयकरं रिक्तासु षष्ठ्यां तथा ॥२८॥

मूलद्वीशेति । एतैर्मूलादिभिरेकोनविंशतिनक्षत्रैर्विनार्कं शनिं रविशनिवारौ वर्जयित्वाऽन्यवारेषु तत्र पापैर्हीनबलैर्निर्बलैः चंद्रे जलराशिनवांशके सति शुक्रे चंद्रे च मांसले पुष्टे सति उदिते इत्यर्थः । गुरौ लग्ने च सति तदा प्रथमं हलप्रवहणं शस्तं स्यात् । कश्यपः । "गुरौ लग्नगते शुक्रे बलिन्याप्योदये विधौ । शस्ता कृषिक्रिया तत्र दुर्बलैः क्रूरखेचरैः" । अथ सिंहे घटे कुंभे कर्के अजे मेषे एणे मकरे धटे तुलायां तनौ लग्ने तथा रिक्तासु षष्ठ्याम् । तथाशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थस्तेनाष्टम्यामपि न शस्तम् । यस्मात्सं-क्षयकरम् ॥ २८ ॥

अथ बीजोप्तिमुहूर्त्तं फणिचक्रं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

एतेषु श्रुतिवारुणादितिविशाखोडूनि भौमं विना
बीजोप्तिर्गदिता शुभा त्वशुभतोऽष्टाग्नींदुरामेंदवः ॥
रामेंद्वग्नियुगान्यसच्छुभकराण्युप्तौ हलेऽर्कोज्झिताद्भाद्रा-
माष्टनवाष्टभानि मुनिभिः प्रोक्तान्यसत्संति च ॥ २९ ॥

एतेष्विति ॥ पूर्वोक्तनक्षत्रेषु श्रुतिवारुणादितिविशाखोडूनि विना श्रवणादिवर्जितेषु मूलमघाध्रुवमृदुक्षिप्रधनिष्ठास्वातीषु भौमं विना भौमवारव्यतिरिक्तवारेषु बीजोप्तिर्बीजवापनं शुभं ज्ञेयम् । नारदः । "मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु पितृवायुवसूडुषु । समूलभेषु बीजोप्ति-रत्युत्कृष्टफलप्रदा । रवौ रौद्राद्यपादस्थे भूमौ संजायते रजः । तस्मा-द्दिनत्रयं तत्र बीजवापं परित्यजेत्" इति राजमार्तंडे आर्द्राप्रथमदिन-

त्रयनिषेधः । अथ बीजोप्तौ फणिचक्रम् । अगुभतो न विद्यंते गावो यस्येति अगुः राहुस्तस्य भं तदाक्रांतनक्षत्रं तस्मादादौ अष्टौ भानि असंति असमीचीनानि । ततस्त्रीणि शुभकराणि । तत एकमशुभम् । ततस्त्रीणि शुभकराणि तत एकमशुभकरम् । ततस्त्रीणि शुभकराणि । तत एकमशुभकरम् । ततस्त्रीणि शुभकराणि ततश्चत्वार्यशुभानि एवं बीजोप्तौ सप्तविंशतिनक्षत्राणां शुभाशुभत्वमुक्तम् । रत्नमालायाम् । " मूर्ध्नि त्रीणि गले त्रयं च जठरे धिष्ण्यानि च द्वादशे " इत्यादि । लग्नशुद्धिमाह वसिष्ठः । "भवरिपुसहजे पापैस्त्रिकोणकेंद्रस्थितैश्च शुभैः । कथिते शुभधिष्ण्येऽपि च शुभलग्ने बीजवापनं कार्यम् " । अथ हलचक्रमुच्यते । हले इति । हलचक्रे अर्कोज्झितात् भात् नक्षत्रात् क्रमेण त्रीणि असंति अशुभानि ततोऽष्ट भानि संति शुभानि ततो नव भानि असंति ततोऽष्टौ भानि संति । यथा सूर्ये आर्द्रायां भुक्तभं मृगः तत आरभ्य त्रीणि अशुभानि ततः पुष्यतोऽष्ट भानि शुभानि ततो विशाखातो नवभान्यशुभानि ततः शततारकातोऽष्टभानि शुभानि एवमष्टाविंशतिभानि जातानि । तथाच वसिष्ठः । " अर्कगतागतसंस्थे भत्रितयं नेष्टमुभयतस्त्विष्टम् । षोडशधिष्ण्यं नवकं शिष्टमनिष्टं च लांगले चक्रे । कश्यपोऽपि । त्रिष्वष्टसु नवर्क्षेषु सप्तस्वर्कविमुक्तभात् । हानिर्वृद्धिः कर्तृनाशो लक्ष्मीप्राप्तिर्यथाक्रमात् " इति । एवं बहुमुनिसंवादे सति इनप्रोज्झितर्क्षात् त्रिवह्नित्रीषुत्रीषुत्रिरामा ३३।३५।३५।३३ ण्यशुभशुभदानि क्रमाल्लांगलाख्य इति यदुक्तं गणेशदैवज्ञैर्मुहूर्त्ततत्वे तत् चिंत्यम् । ऋषिवाक्यमूलाभावात् । ननु श्रीपतिवाक्यम् । "अर्काक्रांतगतागतान्यनडुहां नाशाय भान्यग्रतो वृद्ध्यै भत्रितयं ततस्तु कृषिकृद्धाताय शूलत्रये । धिष्ण्यानां नवकं तदंतरगते स्यातां श्रियै पंचके यच्चान्यत्रितयं तदत्र गदितं चक्रे शुभे लांगले " इति मूलं चेत् न ह्ययं श्रीपतिवाक्ये शब्दार्थः किंतु मूलवाक्यावोधेन स्वाज्ञानप्रकाशकः । वाक्यार्थस्तु अर्काक्रांतः गतानि त्रीणि भानि वृषनाशकराणि स्युः । ततस्त्रीणि वृद्ध्यै ततः पंचनक्षत्राण्यपास्य अग्रिमाणि नवभानि शूलत्रये त्रिकं त्रिकं

कृषिकृद्धाताय स्थाप्यानि । नन्वत्र पंचनक्षत्रत्यागे को हेतुरित्यत आह । तदंतरगते पंचक इति । तच्छब्देन हलोर्ध्वदंडशूलोर्ध्वदंडा-वुच्येते । अर्काक्रांतगतागतान्यनडुहां नाशाय भान्यग्रतो वृद्ध्यै भत्रितयं अयमंतरस्य पूर्वावधिः । मध्ये ततःपदोपादानात् । तु-शब्दस्तु आनंतर्यद्योतनार्थः । तु अनंतरं शूलत्रये धिष्ण्यानां नवकं कृषिकृद्धातायेति अंतरस्योत्तरावधिः । तदंतरगते मध्ये विद्यमानानां धिष्ण्यानां पंचकं पंचकं च श्रियै स्थाप्ये नक्षत्रदशकमिति यावत् । यच्चान्यत्रितयं हलदंडोर्ध्वभागे शुभफलदं लेख्यम् । एवं च सति ऋषि-वाक्यैः सहास्यैकार्थतैव संपद्यते । अनेन महेश्वरादयोऽपि प्रत्युक्ताः ॥

अथ शिरामोचनविरेचनादिमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

त्वाष्ट्रान्मित्रकभाद्वयेऽबुपलघुश्रोत्रे शिरामोक्षणं
भौमार्केज्यदिने विरेकवमनाद्यं स्याद्बुधार्की विना ॥
मित्रक्षिप्रचरध्रुवे रविशुभाह्ने लग्नवर्गे विदो
जीवस्यापि तनौ गुरौ निगदिता धर्मक्रिया तद्बले ३०

त्वाष्ट्रादिति ॥ त्वाष्ट्राद्द्वये चित्रास्वात्यौ मित्रभाद्वये अनुराधा-ज्येष्ठे कभाद्वये रोहिणीमृगौ श्रोत्रं श्रवणः चित्रादिष्वेकादशसु नक्ष-त्रेषु भौमार्कगुरुवारे शिरामोक्षणं रुधिरवाहिनी नाडिका शिरा त-स्याः सूक्ष्मशस्त्रघातेन शिरातो रक्तमोक्षणं कुर्यात् । अथ बुधार्की विना बुधशनिवारौ त्यक्त्वाऽन्यवारेषु पूर्वोक्तनक्षत्रेषु च विरेकवम-नाद्यम् । औषधेन सुखप्रवृत्तिर्विरेकः वमनं वांतम् एतदाद्यं कुर्यात् । मित्रक्षिप्रचरध्रुवेषु त्रयोदशनक्षत्रेषु रविवारे शुभग्रहवारे च विदो बुध-स्य लग्नवर्गे जीवस्यापि लग्नवर्गे यस्मिन् कस्मिंश्चिल्लग्नेऽपि गुरुबु-धयोः षड्वर्गे सति तनौ लग्ने गुरौ च सति कर्तुर्गुरुबले च सति धर्मक्रियाकोटिहोमरुद्रानुष्ठानादिरूपा निगदिता कथिता ॥ ३० ॥

अथ धान्यच्छेदनं वसंततिलकयाह—

तीक्ष्णाजपादकरवह्निवसुश्रुतींदुस्वातीमघोत्तरज-

लांतकतक्षपुष्ये ॥ मंदाररिक्तरहिते दिवसेऽतिश-
स्ता धान्यच्छिदा निगदिता स्थिरभे विलग्ने ॥३१॥

तीक्ष्णाजपादेति ॥ एतेष्वेकोनविंशतिनक्षत्रेषु तथा भौमशनिरिक्तावर्जितदिने स्थिरलग्ने सति धान्यादीनां यवादीनां छिदा छेदनं निगदिता कथिता ॥ ३१ ॥

अथ कणमर्दनं सस्यरोपणं च वसंततिलकयाह—

भाग्यार्यमश्रुतिमघेंद्रविधातृमूलमैत्रांत्यभेषु कथि-
तं कणमर्दनं सत् ॥ द्वीशाजपान्निर्ऋतिधातृशतार्य-
मर्क्षे सस्यस्य रोपणमिहार्किकुजौ विना सत् ॥३२॥

भाग्येति ॥ विधाता रोहिणी अंत्यं रेवती एषु नवभेषु कणानां चणकादीनां मर्दनं यष्टिघातादिना वितुषीकरणं सत्समीचीनं स्यात् । अथ विशाखादिषण्णक्षत्रैः आर्किकुजौ विना शनिभौमतोऽन्यवारेषु सस्यस्य धान्यस्य रोपणं सत् शुभम् ॥ ३२ ॥

अथ धान्यस्थितिं धान्यवृद्धिं च वसंततिलकयाह—

मिश्रोग्ररौद्रभुजगेंद्रविभिन्नभेषु कर्काजतौलिरहिते
च तनौ शुभाहे ॥ धान्यस्थितिः शुभकरी गदि-
ता ध्रुवेज्यद्वीशेंद्रदस्रचरभेषु च धान्यवृद्धिः ॥ ३३ ॥

मिश्रोग्रेति ॥ मिश्रोग्रादिविभिन्नेषु मिश्रादिदशनक्षत्रेभ्योऽन्येषु सप्तदशनक्षत्रेषु तथा कर्कमेषतुलारहिते लग्ने मकरस्थिरद्विस्वभावलग्नेषु शुभाहे चंद्रबुधगुरुशुक्रवारे धान्यानां स्थितिरेकत्र स्थले स्थापनं सा शुभकरी निगदिता । अथ ध्रुवेज्यादित्रयोदशनक्षत्रेषु धान्यवृद्धिः मह्यमेतावद्धान्यं देहि ततो मासद्वयानंतरं सपादं सार्द्धं वा दास्यामीत्येवंरूपा वृद्धिर्निगदिता ॥ ३३ ॥

अथ शांतिकपौष्टिकादिकं वसंततिलकयाह—

क्षिप्रध्रुवांत्यचरमैत्रमघासु शस्तं स्याच्छांतिकं च

सह पौष्टिकमंगलाभ्याम् ॥ खेऽर्के विधौ सुखगते त-
नुगे गुरौ नो मौढ्यादिदुष्टसमये शुभदं निमित्ते॥३४॥

क्षिप्रेति ॥ क्षिप्रादिनक्षत्रेषु पौष्टिकमंगलाभ्यां सह पौष्टिककर्मणा ग्रहशांत्या मंगलकर्मणा विनायकशांत्या सह शांतिकं दुष्टफलदमूलादिनक्षत्रोत्पन्नशांत्यादि शुभं स्यात् । लग्नात् खे दशमेऽर्के सति विधौ चंद्रे सुखगते चतुर्थे गुरौ लग्नस्थे सति तच्छांतिकं मौढ्यादिदुष्टसमये गुरुशुक्रास्तादिदुष्टकाले नो शुभदम् । तथा निमित्ते केत्वाद्युत्पातदर्शने सति गुरुशुक्रास्तादावपि शुभदं स्यात् । उक्तं च । "शांतिकर्माणि कुर्वीत रोगे नैमित्तके तथा । गुरुभार्गवमौढ्येऽपि दोषस्तत्र न विद्यते" ॥ ३४ ॥

अथ होमाहुतिशुद्धिमनुष्टुभाह--

सूर्यभात्त्रित्रिभे चांद्रे सूर्यविच्छुक्रपंगवः ॥
चंद्रारेज्यागुशिखिनो नेष्टा होमाहुतिः खले ॥ ३५ ॥

सूर्यभादिति ॥ सूर्याक्रांतनक्षत्रात्त्रित्रिभे नक्षत्रत्रयमध्ये चांद्रे चंद्रनक्षत्रे दिननक्षत्रे सति क्रमात्सूर्यादिमुखे होमाहुतिः पतति । यथा सूर्याक्रांतनक्षत्रात् नक्षत्रत्रयमध्ये होमारंभे सूर्यमुखे होमाहुतिपातः ततो नक्षत्रत्रयेषु बुधस्य ततः शुक्रस्य ततः पंगोः शनेः ततश्चंद्रस्य तत आरभ्य भौमस्य तत इज्यस्य गुरोः. ततः अगोः राहोः ततः शिखिनः केतोः । एवं सति यद्दिने खले पापग्रहमुखे होमाहुतिः पतति सा नेष्टा न शुभदा । अर्थाच्छुभग्रहमुखे शुभा । सूर्यनक्षत्राच्चंद्रनक्षत्रपर्यंतं गणना ॥ ३५ ॥

अथ यद्दिने होमश्चिकीर्षितस्तद्दिने वह्निनिवासवशेन शुभाशुभफलमिंद्रवज्रयाह—

सैका तिथिर्वारयुता कृताप्ता शेषे गुणेऽभ्रे भुवि वह्निवासः॥
सौख्याय होमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ दिवि भूतले च॥

सैकेति ॥ शुक्लादिगणनया वर्तमानतिथिर्गण्या । एकयुता वर्तमानवारयुता चतुर्भक्ता यच्छेषं तच्चेद्गुणमितं त्रिमितं शून्यमितं च तदा भुवि भूमौ वह्नेर्वासो वसतिः । फलमाह सौख्याय । होमे होमदिने भूमावग्नेर्वासे सति सौख्यं भवति । अथ शशियुग्मशेषे एकमितशेषेऽग्निवासो दिवि स्वर्गे तत् फलं कर्तुः प्राणनाशः । द्विमिते शेषेऽग्निवासो भूतले तत्फलं कर्तुरर्थनाशः । उक्तं च " तिथिवारयुतिः सैका वेदभक्तावशेषकात् । निवासोऽग्नेर्व्योम्नि रूपे वित्तप्राणाविनाशदः । पाताले द्विकशेषेण धनसंचयनाशनः । गुणवेदावशेषेण भूमौ विपुलसौख्यदः । संस्कारेषु विचारोऽस्य न कार्यो नापि वैष्णवे । नित्ये नैमित्तिके कार्ये न चाब्दे मुनिभिः स्मृतः ।" केश्चित्खेटसुप्तमपि होमे वर्ज्यमित्युक्तम् । तद्यथा " अर्कश्चंद्रादष्टमे ज्ञाच्चतुर्थे मंदः शुक्रादष्टमेऽगारकश्च । राहुर्धर्मे जीवतः खेटसुप्ते होमे नाशः पुत्रदाराधनानाम् " इति ॥ ३६ ॥

अथ प्रतिवर्षोत्पन्ननवान्नभक्षणमनुष्टुभाह—

**नवान्नं स्याच्चरक्षिप्रमृदुभे सत्तनौ शुभम् ॥**
**विना नंदा विषघटी मधुपौषार्किभूमिजाम् ॥ ३७ ॥**

नवान्नमिति ॥ चरादिद्वादशभेषु सत्तनौ समीचीनलग्ने शुभग्रहैर्युते दृष्टे चेत्यर्थः । नंदातिथयः १।६।११ विषघटी विवाहप्रकरणोक्ता मधुश्चैत्रः पौषः आर्किः शनिः भूमिजो भौमः । एतान्विना वर्जयित्वा नवान्नभक्षणं शुभम् ॥ ३७ ॥

अथ नौकाघटनमनुष्टुभाह—

**याम्यत्रयविशाखेंद्रसार्पपित्र्येशभिन्नभे ॥**
**भृग्वीज्यार्कदिने नौकाघटनं सत्तनौ शुभम् ॥ ३८ ॥**

याम्यत्रयेति ॥ याम्यत्रयं भरणीकृत्तिकारोहिण्यः ईश आर्द्रा । अन्यानि प्रसिद्धानि । एभ्यो भिन्ननक्षत्रेषु शुक्रगुरुरविवारसत्तनौ शुभयुतदृष्टे लग्ने नौकाघटनं नौकानिर्माणं शुभम् । नौकाचालननौ-

कागमनमुहूर्तौ दीपकायाम् । "शुभाहे विष्णुयुग्मेंदुभगमैत्राश्विपाणिषु । चालनं घटनस्थानान्नावः शुभतिथींदुषु । अश्विकेज्यसुधानिधिपूर्वामित्रधनाच्युतभे शुभलग्ने । तारकयोगतिथींदुविशुद्धौ नौगमनं शुभदं शुभवारे" ॥ ३८ ॥

अथ वीरसाधनाभिचारयोर्मुहूर्त्तमनुष्टुभाह—

मूलार्द्राभरणीपित्र्यमृगे सौम्ये घटे तनौ ॥
सुखे शुक्रेऽष्टमे शुद्धे सिद्धिर्वीराभिचारयोः ॥ ३९ ॥

मूलेति ॥ मूलादिनक्षत्रपंचके तथा घटे तनौ कुंभलग्ने सौम्ये बुधे सति तथा शुक्रे सुखे चतुर्थे अष्टमे शुद्धे ग्रहरहिते तादृशे लग्ने वीरस्य धनस्य अभिचारस्य कर्मणः सिद्धिर्निष्पत्तिः ॥ ३९ ॥

अथ रोगनिर्मुक्तस्नानं वसंततिलकयाह—

व्यन्त्यादितिध्रुवमघानिलसार्पधिष्ण्ये रिक्ते तिथौ चरतनौ विकवींदुवारे ॥ स्नानं रुजा विरहितस्य जनस्य शस्तं हीने विधौ खलखगैर्भवकेंद्रकोणे ॥ ४० ॥

व्यंत्येति ॥ विगतान्यंत्यादीनि रेवत्यादीनि नवधिष्ण्यानि येभ्यस्तेष्वष्टादशशिष्टनक्षत्रेषु तथा रिक्तासंज्ञासु तिथिषु चरलग्ने तथा शुक्रचंद्रवर्जितवारे तथा विधौ चंद्रे हीने निषिद्धस्थानस्थे निषिद्धस्थानानि गोचरप्रकरणे । तथा पापग्रहैर्भवे एकादशे केंद्रे प्रथमचतुर्थसप्तमदशमे १ । ४ । ७ । १० कोणे नवपंचमे स्थाने स्थितैः सद्भिः एवंविधे लग्ने रुजा विरहितस्य रोगनिर्मुक्तस्य जनस्य स्नानमारोग्यस्नानं शस्तं शुभम् । नारदः " स्थिरेज्यादितिसार्पांत्यपितृवारुणभेषु च । न कुर्याद्रोगमुक्तस्तु स्नानं वारेऽब्जशुक्रयोः" इति ॥

अथ शिल्पविद्यामनुष्टुभाह—

मृदुध्रुवक्षिप्रचरे गुरौ ज्ञे वा खलग्नगे ॥
विधौ ज्ञजीववर्गस्थे शिल्पविद्या प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

मृदुध्रुवेति ॥ मृदुध्रुवादिनक्षत्रे ज्ञे बुधे दशमे लग्ने वा सति अथवा गुरौ दशमे लग्ने वा सति तथा विधौ चंद्रे बुधगुरुषड्वर्गस्थे च सति शिल्पविद्या नानावर्णादिनिर्मितमूर्त्यादिकं तद्विद्यायाः प्रारंभः प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

अथ संधानमनुष्टुभाह—

**सुरेज्यमित्रभाग्येषु चाष्टम्यां तैतिले हरौ ॥**
**शुक्रदृष्टे तनौ सौम्यवारे संधानमिष्यते ॥ ४२ ॥**

सुरेज्येति ॥ पुष्यादिनक्षत्रेषु तथाऽष्टम्यां तिथौ हरौ द्वादश्यां च तिथौ तैतिलकरणे च तथा शुक्रदृष्टे युते च लग्ने तथा शुभग्रहाणां वारे संधानं संधिर्मैत्रीति यावत् इष्यते । तथा च कश्यपः । “ भाग्ये पुष्ये समैत्रे च लग्ने शुक्रे क्षिते युते । करणे तैतिलेऽष्टम्यां द्वादश्यां संधिरिष्यते ” ॥ ४२ ॥

अथ परीक्षामुहूर्त्तं वसंततिलकयाह—

**त्यक्त्वाष्ट८भूत१४शनिविष्टिकुजाञ्जनुर्भमासौ ८**
**मृतौ रविविधू अपि भानि नाड्याः ॥ द्व्यंगे चरे तनु-**
**लवे शशिजीवताराशुद्धौ करादितिहरींद्रकपे परीक्षा ॥**

त्यक्त्वेति ॥ भूतश्चतुर्दशी जनुर्भमासौ जन्मर्क्ष जन्ममासश्च जन्मराशेरष्टमं सूर्यं चंद्रं च नाड्याः भानि जन्मभकर्मभादिनक्षत्राणि नाडीनक्षत्राणि एतानि त्यक्त्वा द्व्यंगे द्विस्वभावे चरलग्ने वा तन्नवांशे च चंद्रशुद्धौ ताराशुद्धौ गुरुशुद्धौ च सत्यां करो हस्तः अदितिः पुनर्वसुः हरिः श्रवणः इंद्रो ज्येष्ठा कं जलं तत्स्वामी वरुणस्तस्य नक्षत्रं शततारका एषु भेषु परीक्षा कार्या । अन्यत्स्पष्टम् । परीक्षानाम सुवर्णस्तेयादिपातकाभिशस्तस्य शुद्ध्यशुद्धिविचारपूर्वकं तप्तमाषादिरूपा । दिव्यमिति यावत् । उक्तं च दीपिकायाम् । “ नो शुक्रास्तेऽष्टमार्के गुरुसहितरवौ जन्ममासेऽष्टमेंदौ विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ । नाडीनक्षत्रहीने

सुरगुरुरजनीनाथताराविशुद्धौ प्रातः कार्या परीक्षा द्वितनुचरगृहांशोदये शस्तलग्ने " इति। व्यवहारोच्चये। " अष्टम्यां च चतुर्दश्यां प्रायश्चित्तपरीक्षणे। न परीक्षाधिवासश्च शनिभौमदिने भवेत्। ज्येष्ठश्रवणहस्तश्च तथा ज्ञेयः पुनर्वसुः। तद्वच्छतभिषा प्रोक्ता ह्यभियुक्तविचारणे " इति। नाडीनक्षत्राणि दीपिकाकारवचनात्। "जन्मर्क्षमाद्यं दशमं च कर्म संघातिकं षोडशभं च मानसम्। स्यात्पंचविंशं समुदायमष्टादशं त्रयोविंशतिभं विनाशकम्। एवं षड्भोजनः सर्वो जातिदेशाभिषेकभैः। नवभो नृपतिर्ज्ञेयो नाडीताराः स्मृता अमूः " इति। नृजातिनक्षत्राणि वराहसंहितायाम्। "पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां च पुष्येण सहोत्तरा च। सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम्। आदित्यहस्ताभिजिदश्विनानि वणिग्जनस्वाम्यमुपागतानि। मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्यग्रजातेः प्रभविष्णुतायाः। सौम्येंद्रचित्रावसुदैवतानि सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि। सार्पं विशाखाश्रवणे भरण्याश्चांडालजातेरभिनिर्दिशंति इति"। देशो वाराणस्यादिकस्तन्नक्षत्रं शतपदचक्रोक्तम्। यथा वाराणस्याः नक्षत्रं रोहिणीति। अभिषेकभं यस्मिन्पुष्यादिके नक्षत्रे राजाभिषेको जातस्तदभिषेकर्क्षमिति राज्ञां नवभानि इतरेषां षडेव भानि ॥ ४३ ॥

अथ सामान्यतः शुभकार्येषु लग्नशुद्धिमनुष्टुभाह—

**व्ययाष्टशुद्धोपचये लग्नगे शुभदृग्युते ॥**
**चंद्रे त्रिषड्दशायस्थे सर्वारंभः प्रसिद्ध्यति ४४॥**

व्ययेति ॥ व्ययो द्वादशमष्टमम् एतत्स्थानद्वयं शुद्धं ग्रहरहितं यस्मिन्नेतादृशे स्वजन्मराशेर्जन्मलग्नाद्वा उपचयभवने त्रिषडेकादशदशमराशौ लग्नगते शुभैर्दृष्टे युते च तथा चंद्रे त्रिषड्दशायस्ते सति सर्वेषां शुभकार्याणामारंभः प्रसिद्ध्यति। तथाच वसिष्ठः। " उपचयभे लग्नगते व्ययनैधनशुद्धिसंयुते लग्ने। उपचयगे शीतकरे मंगलकर्माणि कार्याणि " इति ॥ ४४ ॥

अथ नक्षत्रेषु ज्वरोत्पत्तौ सत्यां तन्निवृत्तौ दिनसंख्यां
द्वितीयोपजातिकयोपेंद्रवज्रया चाह—

**स्वातींद्रपूर्वाशिवसार्पभे मृतिर्ज्वरेंऽत्यमैत्रे स्थिरता भवेद्रुजः॥ याम्यश्रवोवारुणतक्षभे शिवा११घस्रा-हिपक्षो१५ द्व्यधिपार्कवासवे ॥ ४५ ॥ मूलाग्नि-दास्रे नवपित्र्यभे नखाः २० बुध्न्यार्यमेज्यादिति-धातृभे नगाः७॥ मासोऽब्जवैश्वेऽथ यमाहिमूलभे मिश्रेशपित्र्ये फणिदंशने मृतिः ॥ ४६ ॥**

स्वातींद्रेति । मूलाग्नीति ॥ स्वातीज्येष्ठापूर्वात्रयार्द्राश्लेषासु ज्वरे ज्वरोत्पत्तौ सत्यां मृतिर्मरणं स्यात् । अथांत्यमैत्रे रेवत्यनुराधयोर्ज्वरोत्पत्तौ रुजो रोगस्य स्थिरता बहुकालेन रोगनिवृत्तिः स्यात् । तथा भरणीश्रवणशततारा: तक्षभं चित्रा एतेषु नक्षत्रेषु शिवा घस्राः एकादश दिवसाः रोगः । द्व्यधिपं विशाखा अर्को हस्तः वासवं धनिष्ठा एषु त्रिषु भेषु पंचदशदिवसाः रोगः । मूलं अग्निः कृत्तिका दास्रमश्विनी एषु नवदिवसा रोगः। पित्र्यभे मघायां नखा विंशतिर्दिवसाः । बुध्न्यभमुत्तराभाद्रपदा अर्यमा उत्तराफाल्गुनी पुष्यपुनर्वसुरोहिणीषु नगाः सप्तदिवसा रोगः । अब्जवैश्वे मृगोत्तराषाढयोः मासस्त्रिंशद्दिनानि रोगस्थैर्यं ततो रोगनिवृत्तिः । अत्र शांतिर्वसिष्ठोक्ता । “ ऋक्षेशरूपं कनकेन कृत्वा तल्लिंगमंत्रैश्च सुगंधपुष्पैः । वस्त्राक्षतैर्गुग्गुलुधूपदीपैर्नैवेद्यतांबूलफलैश्च सम्यक् ॥ पूजां च कृत्वाऽऽमयनाशनाय द्विजाय दद्यादतुलं शिवाय ”। आमयो रोगः । अतुलमपरिमितद्रव्यम् । अथानंतरं यमाहिमूलभे भरण्याश्लेषामूलेषु कृत्तिकाविशाखार्द्रामघासु च सप्तनक्षत्रेषु यस्य कस्यचित्फणिदंशने मृतिर्भवेत् । अत्र सर्पदंशे यस्य एतेषु गोचरवशेन चंद्रबलं न भवति तस्यैव सर्पदंशेन मृतिः स्यात् । उक्तं च । दीपिकाटीका-

कृताऽच्युतभट्टेन । " यद्यत्र चंद्रस्तस्यैव गोचरे चाशुभप्रदः । तदा नूनं भवेन्मृत्युः सुधासंसिक्तदेहिनः " इति ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ शीघ्रं रोगिमरणे विशिष्टप्रयोगं द्वितीयोपजातिकयाह—

**रौद्राहिशाक्रांबुपयाम्यपूर्वाद्विदैवंवस्वग्निषु पापवारे ॥ रिक्ताहरिस्कंददिने च रोगे शीघ्रं भवेद्रोगिजनस्य मृत्युः ४७**

रौद्राहीति ॥ रौद्रादिनक्षत्रेषु पापवारे सति रिक्ताः प्रसिद्धाः हरिर्द्वादशी स्कंददिनं षष्ठी एतासु तिथिषु एवंविधिविशिष्टयोगे यस्य रोगोत्पत्तिर्भवति तस्य रोगिजनस्य शीघ्रं मृत्युर्भवेत् ॥ ४७ ॥

अथ प्रेतदाहमुहूर्त्तंप्रेतदाहादिनिषेधं चंद्रवंशयाह—

**क्षिप्राहिमूलेंदुहरीशवायुभे प्रेतक्रिया स्याज्झषकुं-**
**भगे विधौ ॥ प्रेतस्य दाहं यमदिग्गमं त्यजेच्छय्या-**
**वितानं गृहगोपनादि च ॥ ४८ ॥**

क्षिप्रेति ॥ क्षिप्रादिनक्षत्रेषु प्रेताक्रिया प्रेतानां मृतानां क्रिया उत्तमलोकप्राप्त्यर्थं श्राद्धादिक्रिया स्यात् । यदि दाहसमये कारणवशान्नारब्धा । अथ झषकुंभगे विधौ मीनकुंभस्थिते चंद्रे धनिष्ठोत्तरार्धादिपंचनक्षत्रे प्रेतस्य दाहो ज्वालनं त्यजेत् । च पुनः यमदिग्गमं दक्षिणदिशि गमनं यात्राम् । तथा शय्यायाः खट्वाया वितानं वयनम् । तथा गृहगोपनं गृहाच्छादनम् आदिशब्देन तृणकाष्ठसंग्रहं च त्यजेत् । ब्रह्मपुराणे पंचके मरणमपि निषिद्धम् । " कुंभमीनस्थिते चंद्रे मरणं यस्य जायते । न तस्योर्ध्वगतिर्दृष्टा संततेर्न शुभं भवेत् " इति । तेन पंचके मृतस्य पंचके दाहप्राप्तौ सत्यां तत्पुत्तलविधिं कृत्वा दाहः कार्यः । पश्चादाशौचनिवृत्त्यनंतरं शांतिकं कार्यम् । यदि पंचकप्रवृत्तेः प्रागेव मृतस्तस्य प्रतिबंधवशात्पंचके दाहप्राप्तौ पुत्तलविधिं कृत्वा दाहः कार्यः । आशौचनिवृत्त्यनंतरं शांतिर्न कार्या । एवं रेवत्यंतमृतस्य रेवतीमपहाय दाहः कार्यो न पुत्तलविधिः । आशौचनिवृत्त्यनंतरं शांतिरेव कार्या । मरणनिषेधदाहनिषेधप्रतिपादकवचनद्वयसद्भावादिति ॥ ४८ ॥

अथ काष्ठानां गोमयपिंडानां च संग्रहमुहूर्त्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

सूर्यर्क्षाद्रसभैरधःस्थलगतैः पाको रसैः संयुतः
शीर्षे युग्मगतैः शवस्य दहनं मध्ये युगैः सर्पभीः ॥
प्रागाशादिषुवेदभैः स्वसुहृदां स्यात्संगमो रोगभीः
क्वाथादेः करणं सुखं च गदितं काष्ठादिसंस्थापने ४९

सूर्यर्क्षाद्रसभैरिति ॥ स्पष्टार्थम् ॥ ४९ ॥

अथ त्रिपुष्करयोगं सफलं वसंततिलकयाह—

भद्रातिथी रविजभूतनयार्कवारे द्वीशार्यमाजचरणा-
दितिवह्निवैश्वे ॥ त्रैपुष्करो भवति मृत्युविनाशवृ-
द्धौ त्रैगुण्यदो द्विगुणकृद्वसुतक्षचांद्रे ॥ ५० ॥

भद्रातिथिरिति ॥ भद्रासंज्ञकतिथिर्द्वितीया सप्तमी द्वादशी शनिभौमसूर्यवारे भवति । तथा द्वीशं विशाखा अर्यमोत्तराफाल्गुनी अजचरणः पूर्वाभाद्रपदा अदितिः पुनर्वसुः वह्निः कृत्तिका वैश्वमुत्तराषाढा एषु नक्षत्रेषु उक्ततिथिवारनक्षत्ररूपे विशिष्टयोगे सति त्रैपुष्करः त्रिपुष्कर एव त्रैपुष्करः स्वार्थेऽण् । त्रिपुष्करसंज्ञको योगो भवति । कीदृशः मृत्युविनाशवृद्धौ त्रैगुण्यदः । तद्दिने यदि कश्चिन्म्रियेत तद्दायादास्त्रयो म्रियेरन् । यदि किंचिद्वस्तु विनष्टं तदा तस्य तद्वस्तुत्रयनाशः तथा किंचिद्वस्तु लब्धं तदा त्रिगुणस्तद्वस्तुलाभः । वसिष्ठः । "रविरविजभौमवारे भद्रायां विषमपादमृक्षं चेत् । त्रैपुष्कराख्ययोगस्त्रिगुणफलो यमलभैर्द्विगुणः ।" विषमपादानि यन्नक्षत्रस्यैकचरणः पूर्वराशौ चरणत्रयमपरराशौ भवति तानि विषमचरणानि द्वीशार्यमेत्यादीनि । अथ वसुर्धनिष्ठा तक्षं चित्रा चांद्रं मृगः एतानि भानि भद्रातिथयः रविशनिभौमवाराश्च अत्रापि विशिष्टयोगे द्विपुष्करनामयोगो भवति । तत्फलं मृत्युविनाशवृद्धौ द्वैगुण्यकृद्भवति । तत्र शांतिमाह । नारदः । "दद्यात्तद्दोषनाशाय गोत्रयं मूल्य-

मेव वा । द्विपुष्करे द्वयं दद्यान्न दोषस्त्वृक्षमात्रतः ॥ " इति । अत्र त्रिपुष्करे कश्यपेन रविस्थाने बृहस्पतिवारोऽप्युक्तः।भद्रातिथिः शनीज्यारवारे चेद्विषमांघ्रिभम् । त्रिपुष्करं त्रिगुणदं द्विगुणं द्व्यंघ्रिभं मृताविति । इदमेव दृष्ट्वा श्रीपतिनाप्युक्तम् । विषमचरणं धिष्ण्यमित्यादि । अत्र कश्यपवाक्ये मृतावेव त्रिगुणफलतोक्ता । ग्रंथकृता तु श्रीपतिवाक्यानुरोधान्मृत्युविनाशवृद्धावित्युक्तम् ॥ ५० ॥

अथ शवप्रतिकृतिदाहे निषिद्धकालं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

शुक्रारार्किषु दर्शभूतमदने नंदासु तीक्ष्णोग्रभे
पौष्णे वारुणभे त्रिपुष्करदिने न्यूनाधिमासेऽयने ॥
याम्येऽब्दात्परतश्च पातपरिघे देवेज्यशुक्रास्तके
भद्रावैधृतयोः शवप्रतिकृतेर्दाहो न पक्षे सिते ॥५१॥

शुक्रारेति ॥ एवंविधे दिने शवस्य प्रतिकृतिः पर्णशरादिना सावयवत्वकल्पनं तस्य दाहो न कार्यः । कुतः । द्विविधो हि प्रेतसंस्कारः प्रत्यक्षशरीरस्यैकस्तत्प्रतिकृतेरन्यः । तस्य प्रत्यक्षशरीरसंस्कारे दिनविचाराभावः । प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैवं विशोधयेदिति । प्रतिकृतिसंस्कारे कालत्रयम् । आशौचमध्ये वर्षमध्ये वर्षानंतरं चेति । "आशौचमध्ये क्रियते पुनः संस्कारकर्म चेत् । शोधनीयं दिनं तत्र यथासंभवमेव तु ॥ आशौचविनिवृत्तौ चेत्पुनः संस्क्रियते मृतः । संशोध्यैव दिनं ग्राह्यमूर्ध्वं संवत्सराद्यदि ॥" इति गार्ग्यवचनाद्दिनशुद्धिरुच्यते । शुक्रारार्किदिने शुक्रभौमशनिवारे शवप्रतिकृतेर्दाहो न कार्य इति प्रत्येकं संबंधः । दर्शोऽमावास्या भूतश्चतुर्दशी मदनस्त्रयोदशी नंदाः प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः आसु तिथिषु तथा तीक्ष्णोग्रभे मूलार्द्राज्येष्ठाश्लेषास्तीक्ष्णानि पूर्वात्रयं मघा भरणी उग्राणि पौष्णं रेवती वारुणभं शततारा पूर्वोक्ते त्रिपुष्करदिने न्यूनाधिमासे क्षयमासे अधिकमासे । अयने याम्ये अब्दात्परतः अब्दमध्ये याम्यायनेऽपि कार्यः । "नंदामदनभूतामापातवैधृतिवि-

ष्टिषु। शुक्रार्किभौमपरिघध्रुवमिश्रोग्रमैत्रभैः ॥ कर्त्तुश्चंद्रेऽष्टवेदांत्ये जन्मप्रत्यरितारके। त्रिपादभे सिते पक्षेऽयने याम्येऽब्दतः परम् ॥ शवप्रतिकृतेर्दाहः शुक्रेज्यास्ताधिमासके।नष्टौ मध्यो द्विपान्मैत्रद्वीशादितिभगध्रुवे॥" इति निबंधोक्तेः। दिनक्षयोऽपि वर्ज्यः।वर्जयेत्तु दिनक्षयमिति गार्ग्योक्तेः। पातपरिघे पातो व्यतीपातो महापातश्च परिघश्च एतेषु दाहो न कार्यः। देवेज्यशुक्रास्तके दाहो न कार्यः।भद्रायां वैधृतौ च तथा सिते शुक्लपक्षे इति ॥ ५१ ॥

अथ तेनैव च्छंदसा वर्ज्यान्तराण्याह—

**जन्मप्रत्यरितारयोर्मृतिसुखांत्येऽब्जे च कर्त्तुर्न सन्**
**मध्यो मैत्रभगादितिध्रुवविशाखाद्यंघ्रिभे ज्ञेऽपि च ॥**
**श्रेष्ठोऽर्केज्याविधोर्दिने श्रुतिकरस्वात्याश्विपुष्ये तथा**
**त्वाशौचात्परतो विचार्यमखिलं मध्ये यथासंभवम् ५२**

जन्मप्रत्यरितारयोरिति ॥कर्त्तुर्जन्मप्रत्यरितारयोः जन्मतारा उत्पत्तिनक्षत्रं दशमैकोनविंशं चेति प्रत्यरितारा जन्मभात्पंचमचतुर्दशत्रयोविंशं नक्षत्रम्। तथा कर्तुर्मृतिसुखांत्येऽब्जे अष्टमचतुर्थद्वादशस्थे चंद्रे सति दाहो न सन्न प्रशस्तः। अथ मध्यनक्षत्राणि। मैत्रमनुराधा भगः पूर्वाफाल्गुनी अदितिः पुनर्वसुः ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयम्। विशाखाद्यंघ्रिभं मृगचित्राधनिष्ठाः। ज्ञे बुधेऽपि शवदाहो मध्यमः। अथोत्तमानि। अर्केज्याभ्यां सहिते विधुः अर्कगुरुचंद्रवारे तथा श्रवणहस्तस्वात्याश्विनीपुष्येषु पंचनक्षत्रेषु शवप्रतिकृतेर्दाहः श्रेष्ठः। इदमखिलमाशौचात्परतोऽनंतरम्। मध्ये तु यथासंभवं किंचिद्गुणांगीकारेण विचार्यम् ॥ ५२ ॥

अथ मूलनक्षत्रजातस्य विशेषमुपजातिकयाह—

**अभुक्तमूलं घटिकाचतुष्टयं ज्येष्ठांत्यमूलादिभवं हि**
**नारदः ॥ वसिष्ठ एकद्विघटीमितं जगौ बृहस्पति-**
**स्त्वेकघटीप्रमाणकम् ॥ ५३ ॥**

अभुक्तमूलमिति ॥ नारदः अभुक्तमूललक्षणं ज्येष्ठांत्यमूलादिभवं घटीचतुष्टयं जगौ । ज्येष्ठांत्यघटीचतुष्टयं मूलादिघटीचतुष्टयं चेत्यर्थः। नारदः ।"यो ज्येष्ठामूलयोरंतरालप्रहरजः शिशुः। अभुक्तमूलजः सार्पमघानक्षत्रयोरपि॥" अयमेव मुख्यः पक्षः । कश्यपादिबहुमुनिसंवादात् । कश्यपः । " ज्येष्ठांत्यमूलयोरंतरालयामोद्भवः शिशुः।अभुक्तमूलजः सोऽथ त्वाश्लेषापित्र्ययोरपि ॥ " वसिष्ठोऽपि । "भुजंगपौरंदरपौष्णभानां तदग्रभानां च तदंतरालम् । अभुक्तमूलं प्रहरप्रमाणं त्यजेत्सुतं तत्र भवां सुतां च॥" इति ।वसिष्ठ एकद्विघटीमितं जगौ । ज्येष्ठान्ते एकघटिका मूलाद्यघटिकाद्वयमित्यर्थः । इदं वसिष्ठेन केचिन्मतमुक्तम् । यतस्तद्वाक्ये केचित् अपरे इति पदोक्तेः। तद्वाक्यं च । " ज्येष्ठांत्यपादघटिकामितमेव केचिन्मूलं ह्यभुक्तमपरे पुनरामनंति ।मूलाद्यपादघटिकाद्वितयेन सार्द्धमष्टौ समाः परिहरेदिह जन्मभाजम् ॥ " इति । बृहस्पतिस्तु एकघटीप्रमाणकं जगौ । ज्येष्ठांत्यार्धघटिका मूलाद्या चार्धघटिकेत्यर्थः । गुरुः । " ज्येष्ठांत्यघटिकार्द्धं च मूलादौ घटिकार्धकम् । तयोरंतर्गता नाडी ह्यभुक्तं मूलमुच्यते ॥ " इति ॥ ५३ ॥

अथान्य आचार्या उपजातिकयाहुः—

**अथोचुरन्ये प्रथमाष्टघट्यो मूलस्य शाक्रांतिमपंच नाड्यः ॥ जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पितास्याष्टसमा न पश्येत् ॥ ५४ ॥**

अथोचुरन्य इति ॥ आचार्याः प्रोचुः । मूलस्य प्रथमा अष्ट घटिकाः शाक्रस्य ज्येष्ठाया अंतिमाः पंच नाडिका एवमुभयोरंतराले त्रयोदशघटिका अभुक्तसंज्ञकाः प्रोचुः । उक्तं च । " ज्येष्ठांत्या घटिकाः पंच मूलाद्या वसुनाडिकाः । अभुक्तमिति तज्ज्ञेयं तत्र जातं शिशुं त्यजेत् ॥ " इति । तत्फलमाह । तत्राभुक्तमूले जातं शिशुं बालं बालां वा पिता परित्यजेत् । त्यागाशक्तौ वा पितास्याष्टसमा अष्टौ वर्षाणि मुखं न पश्येत् ।नारदः ।"अभुक्तमूलजं पुत्रं पुत्रीमपि

परित्यजेत्। अथवाब्दाष्टकं तातस्तन्मुखं न विलोकयेत् ॥ " इति। अत्र घटीनां न्यूनाधिक्यकथनं दोषस्याधिक्याल्पत्वकथनार्थं ज्ञेयम् ॥ ९४ ॥

अथ मूलाश्लेषाजातस्य चरणवशेन फलमुपजातिकयाह—

**आद्ये पिता नाशमुपैति मूलपादे द्वितीये जननी तृतीये ॥ धनं चतुर्थेऽस्य शुभोऽथ शांत्या सर्वत्र सत्स्यादहिभे विलोमम् ॥ ९५ ॥**

आद्ये पितेति ॥ मूलप्रथमचरणे जातस्य बालस्य पिता नाशं प्राप्नोति। द्वितीयचरणे जननी माता नाशं प्राप्नोति। सापत्नमातरि मातृशब्दो गौणः। तेन गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्यय इति जननीपदप्रयोगः। तृतीयचरणे धनं नश्यति। चतुर्थश्चरणो बालस्य शुभः। अत्र विशेषो नारदेनोक्तः। " दिवा जातस्तु पितरं रात्रौ तु जननीं तथा। आत्मानं संध्ययोर्हंति नास्ति गंडो निरामयः ॥ " वसिष्ठस्तु। " मूलाद्यपादो यदि रात्रिभागे तदात्मनो नास्ति पितुर्विनाशम्। द्वितीयपादो दिनगो यदि स्यान्न मातुरल्पोऽपि तदास्ति दोषः॥ " अथानंतरं शांत्या मूलाश्लेषांत्यास्वनुष्ठितया सर्वत्र चरणचतुष्टयेऽपि सत् शुभमनिष्टफलनाशकं कल्याणं स्यात्। "शास्त्रोक्तरीत्या खलु सूतकांते मासे तृतीयेऽप्यथ वत्सरांते।" इति कालत्रयं वसिष्ठेनोक्तम्। मातृगंडे तु विशेषः। "मातृगंडे सुते जाते सूतकांते विचक्षणः। कुर्याच्छांतिं तदृक्षे वा तद्दोषस्यापनुत्तये ॥ " शिष्टास्तु सर्वत्रापि यन्नक्षत्रे जन्म तन्नक्षत्र एव शांतिरिति व्यवहरंति। अथाहिभे विलोममिति आश्लेषायां मूलपादोक्तं फलं पिलोमं विपरीतं ज्ञेयम्। मूलस्य प्रथमपादे पितृनाश इत्युक्तं स आश्लेषाचतुर्थपादोत्पन्नस्य। द्वितीयपादे मातृनाशः स आश्लेषातृतीयचरणे तृतीयचरणे धननाश उक्तः स आश्लेषाद्वितीयचरणे। चतुर्थचरणे शुभमुक्तं तदाश्लेषाप्रथमचरणे ज्ञेयम्। अत्र बहुविचारोऽस्ति ग्रंथभूय-

स्त्वभयान्न लिख्यते । अथ कश्चिन्मूलवृक्षादिविचार उक्तो जयार्णवे। "मूलं स्तंभस्त्वचा शाखा पत्रं पुष्पफलं शिखा। मुनयोऽष्टौ दिशो रुद्राः सूर्याः पंचाब्धयोऽग्नयः॥ मूले तु मूलनाशः स्यात्स्तंभे वंशविनाशनम्। त्वचि मातुर्भवेत्क्लेशः शाखायां मातुलस्य च॥ पत्रे राज्यं विजानीयात्पुष्पे मंत्रिपदं स्मृतम्। फले च विपुला लक्ष्मीः शिखायामल्पजीवितम्॥" अस्य मूलपुरुषस्यांगेषु घटीन्यासस्तत्रैव । "मूलस्य घटिकान्यासो मूर्ध्नि पंच नृपो भवेत् । मुखे सप्त मृतिः पित्रोः स्कंधे वेदा महाबलः ॥ बाह्वोरष्टौ बली पाण्योस्तिस्रो हस्तान्वितो भवेत् । हृदि खेटा भूपमंत्री नाभौ द्वौ ब्रह्मविद्भवेत्॥ गुह्ये दशातिकामी स्याज्जानुनोः षण्महामतिः। पादयोः षण्मृतिस्तस्येत्युक्तवान्कमलासनः॥" इति । अथ मूलोद्भूतकन्यायाः फलार्थं मूलांगविभागस्तत्रैव ।"चतस्रो नाडिकाः शीर्षे कुर्वंति पशुनाशनम् । मुखे षड् धनहानिः स्यात्कंठे पंच धनागमः ॥ कौटिल्यं हृदये पंच बाह्वोर्वित्तागमस्ततः । वेदाः पाण्योर्दया धर्मं वेदा गुह्येति कामिनीः॥ ज्येष्ठमातुलनाशश्च जंघयोर्युगनाडिकाः। ज्येष्ठभ्रातृविनाशश्च चतस्रो जानुयुग्मके ॥ पादयोर्दश नाड्यश्च तत्र वैधव्यमादिशेत् । इति मूलप्रसूताया मुनिभिः फलमीरितम्॥" अथाश्लेषाजातयोः पुत्रकन्ययोरंगविभागेन फलं तत्रैव । "मूर्ध्नि पंचसु राज्याप्तिर्मुखे सप्त पितृक्षयः । नेत्रे द्वे जननीनाशो ग्रीवायां स्त्रीषु लंपटः॥ स्कंधे वेदा गुरौ भक्तिर्हस्तेऽष्टौ च बली भवेत् । हृद्येकादशभिश्चात्मघाती संजायते नरः ॥ स्त्री वा नाभौ भ्रमः षड्भिर्गुदे नवे तपोधनः । पादे पंच धनं हंति सार्पादेतत्फलं क्रमात् ॥ अथाश्लेषावृक्षोऽपि तत्रैवोक्तः। फलं "पुष्पं दलं शाखा त्वग्लता स्कंध एव च । सार्पवल्ल्यां दशाक्षांकस्वरविश्वार्कसागराः॥ नाडिकास्तद्भवे बाले फलं ज्ञेयं यथाक्रमम् । श्रीः श्रीराजभयं हानिर्मातृपित्रात्मसंक्षयः ॥" इति । अयं विभागो नक्षत्रस्य षष्टिघटिकात्मको ज्ञेयः । न्यूनातिरिक्ते अनुपातः ॥ ५९ ॥

अथ मूलनिवासं सफलमिंद्रवज्रयाह—

स्वर्गे शुचिप्रोष्ठपदेषमाघे भूमौ नभःकार्तिकचैत्रपौषे ॥
मूलं ह्यधस्तात्तु तपस्यमार्गवैशाखशुक्रेष्वशुभं च तत्र५६

स्वर्ग इति ॥ शुचिराषाढः । प्रोष्ठपदो भाद्रपदः । इष आश्विनः । माघः प्रसिद्धः । एषु मासेषु मूलं मूलनक्षत्रं स्वर्गेऽस्ति । श्रावणकार्तिकचैत्रपौषेषु भूमौ तिष्ठति । तपस्यः फाल्गुनः । शुक्रो ज्येष्ठः । फाल्गुनमार्गशीर्षवैशाखज्येष्ठेषु अधः पाताले मूलं तिष्ठति । तत्फलं च यदा मूलनक्षत्रं यस्मिन्मासे यत्र भवति तत्रैव स्वर्गमृत्युपातालेष्वेव प्रोक्तं शुभाशुभफलं ददाति । तेन द्रव्याद्यभावे स्वर्गपातालस्थे मूले दोषाभावाच्छांतेरनावश्यकत्वं ज्ञेयम् । यदा तु भूमावेव मूलं तदा शांतिरवश्यं विधेयेति शक्तेन । उक्तं च ज्यौतिषार्णवे । "भूमिष्ठं दोषबहुलं स्वल्पमन्यत्र संस्थितम् ।" इति । ज्योतिर्निबंधे । "मूलाश्विपित्र्यचरणे प्रथमे च नूनं पौष्णेंद्रयोश्च फणिनश्च तुरीयपादे । मातुः पितुः स्ववपुषोऽपि करोति नाशं जातो यदा निशि दिनेऽप्यथ संध्ययोर्वा ॥" इति । तत्रापि शांत्या शुभं भवतीति ज्ञेयम् ॥ ५६ ॥

अथ मूलप्रसंगाद्दुष्टेषु गंडांतादिनिमित्तेषु जातस्यारिष्टं परिहारं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

गंडांतेंद्रभशूलपातपरिघव्याघातगंडावमे
संक्रांतिव्यतिपातवैधृतिसिनीवालीकुहूदर्शके ॥
वज्रे कृष्णचतुर्दशीषु यमघंटे दग्धयोगे मृतौ
विष्टौ सोदरभे जनिर्ने पितृभे शस्ता शुभा शांतितः ५७

गंडांतेंद्रभेति॥ एतेषु शिशोरुत्पत्तिर्नो शस्ता दुष्टफलदा । गंडांतं तिथिनक्षत्रलग्नानां संधिः । तल्लक्षणं ज्येष्ठापौष्णभेत्यादिना वक्ष्यति । इंद्रभं ज्येष्ठानक्षत्रम् । शूलयोगः । पातो महापातः । परिघव्याघातगंडयोगाः । अवमस्तिथिक्षयः । संक्रांतिः सूर्यसंक्रमणपुण्यकालः । व्यतीपातवैधृती योगौ । सिनीवाली दृष्टेंदुरमावस्या ।

कुहूर्नष्टेंदुरमावस्या । "सा दृष्टेंदुः सिनीवाली सा नष्टेंदुकला कुहूः ।" इत्यभिधानात् । दर्शश्चंद्रदर्शनसहितामावास्या । एतद्ग्रेदोऽग्रे प्रतिपादयिष्यते । वज्रे वज्रयोगे । कृष्णपक्षचतुर्दश्याम् । यमघंटे मघाविशाखेत्युक्ते । दग्धयोगे सूर्येशपंचाग्निरसाष्टनंदा इत्युक्ते । मृतौ द्वीशात्तोयादित्युक्ते मृत्युयोगे । विष्टौ भद्रायाम् । सोदरस्य भ्रातुर्भगिन्या वा नक्षत्रे । पितृभे माता च पिता च पितरौ तयोर्भे मातृपितृभे च । एषु निमित्तेषु सुतस्य सुताया वा जन्म चेत्स्यात्तदाऽनिष्टकृत्स्यादित्यर्थः । दुष्टनिमित्तस्योपलक्षणत्वात् । त्रीतरजन्माप्यनिष्टम् । सजातीयापत्यत्रयप्रसवानंतरं विजातीयापत्यप्रसवस्त्रीतरः । तथा पुत्रत्रयप्रसवानंतरं कन्याजन्म । कन्यात्रयप्रसवानंतरं पुत्रजन्म । सा जनिः शांतितः वसिष्ठादिप्रोक्तशांत्या स्वनुष्ठितया शुभा । परिणामसुखदायिनीत्यर्थः । अथ शांतयो लिख्यंते । तत्र प्रथमं मूलशांतिरुच्यते । " शौनक उवाच । अथातः संप्रवक्ष्यामि मूलजातहिताय च । मातापित्रोर्धनस्यापि कुले शांतिं हिताय च ॥ त्यागो वा मूलजातस्य स्यादष्टाब्दात्प्रदर्शनम् । अभुक्तमूलजातानां परित्यागो विधीयते ॥ अदर्शनाद्वापि पितुः स तु तिष्ठेत्समाष्टकम् । एवं च दुहितुर्ज्ञेयं मूलजातफलं बुधैः ॥ मुख्यकालं प्रवक्ष्यामि शांतिहोमस्य यत्नतः । जातस्य द्वादशाहे तु जन्मर्क्षे वा शुभे दिने ॥ समाष्टके वा मतिमान्कुर्याद्वै शांतिमादरात् ।" वसिष्ठः ।"सुसमे पुण्यदेशे तु मंडपं कारयेद्बुधः। कुंडं च तद्बहिः कुर्याद्ग्रहयज्ञोक्तमार्गतः ॥ पञ्चामृतं पंचगव्यं पंचत्वक्पल्लवानि च । उदुंबरवटाश्वत्थप्लक्षाम्रत्वक्सपल्लवाः ॥ शतौषधीमूलशंखनवरत्नानि मृत्तिकाः । कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचंदनम् ॥ वचा चंपकमुस्ता च सर्वौषध्यो दशैव हि । गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमस्थानसंभवाः ॥ ह्रदगोराजनगरद्वारतश्चाष्टमृत्तिकाः।" शतौषधीमूलानि च । अश्मरी १ सहदेवी २ अपराजिता ३ मुंडा ४ उशीर ५ वाला ६ अधःपुष्पी ७ शंखपुष्पी ८ ज्येष्ठीमधु ९ कोरक १० चक्रांकिता ११

विष्णुक्रांता १२ शिवक्रांता १३ मयूरशिखा १४ काकजंघा १५ भृंगराज १६ कुमारी १७ यह १८ कर्णिकार १९ अपामार्ग २० बिल्व २१ षण्मूला २२ अंबुज २३ उत्तरा २४ पुत्रजीव २५ दूर्वा २६ काश २७ कुश २८ साल २९ ताल ३० चक्रमर्द ३१ सिंही ३२ व्याघ्री ३३ अर्क ३४ प्लक्ष ३५ पलास ३६ पिप्पल ३७ वट ३८ उदुंवर ३९ तुलसी ४० उत्पल ४१ शतपत्र ४२ अतसी ४३ सारिवा ४४ कदंव ४५ बकुल ४६ शमी ४७ राहिक ४८ निर्गुंडी ४९ मुण्डी ५० दंडी ५१ ब्राह्मी ५२ अशोक ५३ सूर्यभक्ता ५४ रुद्रजटा ५५ कदली ५६ बीजपूरक ५७ दमनक ५८ मुसली ५९ पुनर्नवा ६० आम्र ६१ पाटल ६२ श्रीपर्णी ६३ करवीर ६४ चंपक ६५ गुडूची ६६ देवदारु ६७ अगरु ६८ चन्दन ६९ कुटज ७० शिग्रु ७१ हरिद्रा ७२ जटामांसी ७३ वचा ७४ कुष्ठ ७५ तज ७६ दारुहरिद्रा ७७ वंधुजीव ७८ सिंधुवार ७९ शठी ८० अश्वगन्धा ८१ मुस्ता ८२ कुरंटक ८३ पनस ८४ जीवक ८५ जाती ८६ मालती ८७ मधुक ८८ खदिर ८९ सप्तच्छद ९० शिरीष ९१ काकमाची ९२ शतावरी ९३ केतकी ९४ जंबु ९५ शाखा ९६ वेतस ९७ आमलक ९८ सरल ९९ गिरिकर्णी १०० इति । "तिलमाषयवव्रीहिगोधूमानि प्रियंगवः । चणकैः सहिताः सप्त सद्बीजानि च सर्वदा ॥ वज्रमौक्तिकवैदूर्यपुष्परागेंद्रनीलकम् । पंचरत्नमिदं प्रोक्तं मंत्रैः कुंभेषु निक्षिपेत् ॥ सुवर्णेन प्रमाणेन तदर्धार्धेन वा पुनः । निर्ऋतिप्रतिमां कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः॥" अत्र विशेषः शौनकेनोक्तः । " पलमानेन वार्धेन पादेनाथ स्वशक्तितः । नक्षत्रदैवतारूपं कारयित्वा विचक्षणः ॥ यद्वा मूल्यं सुवर्णस्य स्थापयित्वा प्रपूजयेत् । सुवर्णं सर्वदैवत्यं सर्वदेवात्मकोऽनलः ॥ सर्वदेवात्मको विप्रः सर्वदेवमयो हरिः।" इति ।"वस्त्राणि षोडशाष्टौ च शुक्लसूक्ष्माण्यतंद्रितः । ब्राह्मणान्वरयेत्पश्चात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ श्रौत्रियांश्चतुरो वाऽष्टौ द्वादश त्वथ षोडश । प्रधानाचार्यमेतेषां श्रेष्ठं तत्प्रतिमार्चने ॥

ईशानादिचतुष्कोणेष्वव्रणाञ्जलपूरितान् । पूर्वोक्तद्रव्यसंयुक्तान्स्था-पयेद्रक्तवर्णकान् ॥ विप्रान्पृथक्पृथग्वापि मधुपर्कादिनार्चयेत् । द्वारेषु जापकानष्टौ द्वौ द्वौ च वरयेत्पुनः ॥ अब्लिंगैर्वारुणैर्मंत्रैः शुक्लपुष्पा-क्षतादिभिः । तत्तत्कुंभे जलं स्पृष्ट्वा कुशकूर्चैर्जपेदिति ॥ रुद्रसूक्तं च भद्राग्नेरानो भद्रा इति क्रमात् । पुरुषसूक्तं च तन्मन्त्रैर्देवान् ध्यात्वा प्रयत्नतः॥ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । पंचगव्यमिदं कुंभे क्षिपेद्गजमदान्वितम् ॥ रजतं कांचनं ताम्रं विद्रुमं तीर्थवारि च । निक्षिपेद्धेममूल्यं च दशाष्टयवनिर्मितम् ॥ देवदारुश्च शैलेयं पद्मं नीलो-त्पलं तथा । वचां लोध्रं प्रियंगुं च शतच्छिद्रे घटे क्षिपेत् ॥ वंशपात्रो-परि न्यस्तं शतच्छिद्रे घटे स्थितम् । ततश्च निर्ऋतिं देवमर्चयेत्पश्चिमा-मुखम् ॥ मोषुणस्त्विति मंत्रेण शुक्लवस्त्राक्षतादिभिः । मूलरूपं विधात-व्यं श्यामं कुणपवाहनम् ॥ खड्गखेटधरं चोग्रं द्विभुजं च वृकाननम् । स्थापयेच्च ग्रहांश्चैव वस्त्रगंधादिभिर्यजेत् ॥ चरुं च श्रपयेत्तत्र नैर्ऋतं दुष्कृतापहम् ।” तत्र चत्वारः कुंभाश्चतुर्दिक्षु स्थाप्याः । एकः कुंभो रुद्रस्थापनार्थमन्यः स्थाप्यः । एकः शतच्छिद्रः कुंभः तस्मिन्कुंभे देवदारुशैलेयमित्याद्यौषधानि तथा सुवर्णमूल्यमष्टादशयवपरिमितं निक्षिप्य तदुपरि वंशादिपात्रं निधाय तदुपरि वस्त्रं निधाय तत्र निर्ऋतिप्रतिमामिंद्रप्रतिमां जलप्रतिमासहितां स्थापयेत् । ततः षो-डशोपचारैः पंचोपचारैर्वा पूजयेत् । उक्तं च शौनकेन । “ पुण्य-ैर्भिर्मंत्रितैस्तोयैः प्रोक्षितायां क्षितौ ततः । तत्रोदकुंभं सुश्लक्ष्णं रक्तं व्रणविवर्जितम् ॥ अकृष्णमूलं निर्णिक्तं पूरयेन्निर्मलांभसा । आकलशेष्वित्यनया कलशस्थापनं शुभम् ॥ इमं म इति मंत्रेण पूरये-त्तीर्थवारिणा । कुंभं च वस्त्रगंधाद्यैस्तत्तन्मंत्रैः प्रपूजयेत् ॥ याः फलि-नीरित्यनया क्षिपेद्रत्नौषधादिकम् । वस्त्रावगुंठितं कुर्यात्पूरयेत्तीर्थवा-रिणा ॥ कूर्चहेमसमायुक्तं चूतपल्लवसंयुतम् । स्वस्तिकोपरि विन्यस्य क्षीरद्रुमसपल्लवैः ॥ द्रोणव्रीहींश्च निक्षिप्य ईशाने च निधापयेत् । पंचरत्नानि निक्षिप्य सर्वौषधिसमन्वितम् ॥ अर्चितं गंधपुष्पाद्यैः

श्रीरुद्रं तत्र संजपेत् । तथा प्रतिरथं सूक्तं शतरुद्रानुवाककम् ॥ रक्षा-मंत्रं तथा पुण्यं रक्षोघ्नं च स्पृशञ्जपेत् । त्रियंबकं जपेत्सम्यगष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ एकवारं तथा जापी पावमानीः स्पृशञ्जपेत् । जपस्य पंच कुंभांश्च द्वयं वा तदलाभतः ॥ श्रीरुद्रस्यैककुंभं च सर्वसूक्तानि तत्र तु । तथान्यं पंचमं कुंभं पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतम् ॥ चतुःप्रस्रवणं कुर्यात्पंचवक्त्रं च तद्भवेत् । वस्त्रावगुंठितं कुर्यात्पूरयेत्तीर्थवारिणा ॥ पंचरत्नसमायुक्तमाम्रपल्लवसंयुतम् ।" एतस्मिन्नपि पंचरत्नसप्तमृत्तिकाशतमूलदेवदारुप्रभृत्यौषधहेममूलानि क्षिपेत् । तत्र शतमूलालाभे "विष्णुक्रांता सहदेवी तुलसी च शतावरी । मूलानीमानि गृह्णीयाच्छतालाभे विशेषतः । तस्योपरि न्यसेत्पात्रं स्वर्णं वा रौप्यमृन्मयम् । शुद्धवस्त्रेण संछाद्य शतमूलानि निक्षिपेत् । कुंभोपरि न्यसेद्विद्वान्मूलनक्षत्रदैवतम् । अधिप्रत्यधिदेवौ च दक्षिणोत्तरदेशयोः ॥ अधिदेवं यजेदादौ ज्येष्ठानक्षत्रदैवतम् । एवं प्रत्यधिदेवं च पूर्वाषाढर्क्षदैवतम् । स्वलिंगोक्तैश्च मंत्रैश्च प्रधानादीन्प्रपूजयेत् । पंचामृतेन संस्नाप्य आवाह्याथ समर्चयेत् । उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पंचोपचारकैः । रक्तचंदनगंधाद्यैः पुष्पैः कृष्णसितादिभिः । मेषशृंगादिधूपैश्च घृतदीपैस्तथैव च । सुरापोलिकमांसाद्यैर्नैवेद्यैर्भोजनादिभिः । मत्स्यमांससुरादीनि ब्राह्मणानां विवर्जयेत् । सुरास्थाने प्रदातव्यं क्षीरं सैंधवमिश्रितम् । पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रकल्पयेत् । उक्तगंधाद्यलाभे तु यथालाभं समर्पयेत् । पुष्पांतं तु समभ्यर्च्य होमं कुर्याद्यथोदितम् । निर्वापप्रोक्षणादीनि चरोः कुर्याद्यथाविधि । हविर्गृहीत्वा विधिना नैर्ऋतैर्वक्रमाहुनेत्" । अत्र वसिष्ठेन विशेषोऽभिहितः । मूलं प्रजामिति मंत्रद्वयस्य कण्व ऋषिः । निर्ऋतिर्देवता । अनुष्टुप् छंदः । मूलाय स्वाहा प्रजापतये स्वाहेत्युपहोममंत्रौ । "पलाशसमिदाज्येन चरुणाष्टसहस्रकम् । अथवाष्टोत्तरशतं प्रत्येकं जुहुयात्ततः । मूलं प्रजामित्यष्टाभिर्वाक्यैर्मंत्रद्वयेन च । सावित्रसौम्यनैर्ऋत्यमंत्रैरश्वत्थसंभवैः । समिद्भिश्च तिलव्रीहीन्हुत्वा व्याहृतिभिस्ततः । मूलं प्रजामित्यष्टौ च वाक्या—

न्याचार्यको जपेत्। अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा नियतात्मवान्। ” अयं होमप्रकारस्तु शाखांतरविषयो ध्येयः। “मोषुणः परापरेति यत्ते देवोति वाः पुनः। पायसं घृतसंमिश्रं हुनेदष्टोत्तरं शतम्। समिदाज्य-चरून्पश्चाच्छक्तितः संख्यया हुनेत्। अधिदैवतयोश्चैव जुहुयात्स्व-स्वमंत्रकैः। नक्षत्रदेवताभ्यश्च पायसेन तु होमयेत्। कृणुष्वेति पंचद-शभिर्जुहुयात्कृसरं ततः। गायत्र्या जातवेदसे त्रियंबकमिति क्रमात्। सीरा युंजंति तामग्निं वास्तोष्पत्यग्निमेव च। क्षेत्रस्य पतिना गृणाना-ग्निं दूतं तथैव च। श्रीसूक्तेन तथा विद्वान्समिदाज्यचरून्क्रमात्। अष्टो-त्तरशतैर्वाथ अष्टाविंशतिभिः क्रमात्। अष्टाष्टसंख्यया वापि जुहुया-च्छक्तितो बुधः। त्वं नः सोमेन पायसं जुहुयात्तु त्रयोदश। चतुर्गृ-हीतमाज्यं च या ते रुद्रेति मंत्रतः। स्रुवेण जुहुयादाज्यं महाव्याहृ-तिभिः क्रमात्। हुत्वा स्विष्टकृतं पश्चात्प्रायश्चित्ताहुतीर्हुनेत्। आ-चार्यो यजमानो वा अग्नौ पूर्णाहुतिं हुनेत्। होमशेषं समाप्याथ वह्निमा-रोपयेत्ततः। कुंभाभिमंत्रणं कुर्याद्दक्षिणेनाभिमर्शयेत्। मृत्युप्रश-मनार्थाय जपेच्च त्र्यंबकं शतम्। रुद्रकुंभोक्तमार्गेण रुद्रमंत्रं स्पृशञ्ज-पेत्। धूपं दीपं च नैवेद्यं कुंभयुग्मे निवेदयेत्। प्रसादयेत्ततो देवम-भिषेकार्थमादरात्। भद्रासनोपविष्टस्य यजमानस्य ऋत्विजः। दारपुत्रसमेतस्य कुर्युः सर्वेऽभिषेचनम्। अक्षीभ्यामिति सूक्तेन पा-वमानीभिरेव च। आपोहिष्ठेति नवभिराप इद्धाद्वयेन च। सहस्राक्षत्ट-चेनापि देवस्य त्वेति मंत्रकैः। शिवसंकल्पमंत्रेण वक्ष्यमाणैश्च मंत्रकैः। योऽसौ वज्रधरो देवो महेंद्रो गजवाहनः। मूलजातशिशोर्दोषं माता-पित्रोर्व्यपोहतु। योऽसौ शक्तिधरो देवो हुतभुङ् मेषवाहनः। सप्तजि-ह्वश्च देवोऽग्निर्मूलदोषं व्यपोहतु। योऽसौ दंडधरो देवो धर्मो महि-षवाहनः। मूलजातशिशोर्दोषं व्यपोहतु यमो मम। योऽसौ खड्गधरो देवो निर्ऋती राक्षसाधिपः। प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं गंडांतसंभ-वम्। योऽसौ पाशधरो देवो वरुणश्च जलेश्वरः। नक्रवाहः प्रचेता-द्भो मूलोत्थाघं व्यपोहतु। योऽसौ देवो जगत्प्राणो मारुतो मृगवा-

हनः। प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं बालस्य शांतिदः। योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गभृन्नरवाहनः। मातापित्रोः शिशोश्चैव मूलदोषं व्यपोहतु। योऽसौ पशुपतिर्देवः पिनाकी वृषवाहनः। आश्लेषामूलगंडांतदोषमाशु व्यपोहतु। विघ्नेशः क्षेत्रपो दुर्गा लोकपाला नव ग्रहाः। सर्वदोषप्रशमनं सर्वे कुर्वंतु शांतिदाः। तच्छंयोरभिषेकं तु सर्वदोषोपशांतिदम्। सर्वकामप्रदं दिव्यं मंगलानां च मंगलम्। वस्त्रांतरितकुंभाभ्यां पश्चात्तु स्नापयेद्बुधः। ततः शुक्लांबरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः। यजमानो दक्षिणाभिस्तोषयेदृत्विगादिकान्। धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय सवत्सकाम्। निर्ऋतिप्रतिमां कुंभं वस्त्रं हेमं च दापयेत्। ग्रहार्थवस्त्रप्रतिमास्तस्मै दद्यात्प्रयत्नतः। श्रीरुद्रजापिने देयः कृष्णोऽनड्वान्प्रयत्नतः। तत्कुंभवस्त्रप्रतिमास्तस्मै दद्यात्प्रयत्नतः। उक्तालाभे ततो दद्यादाचार्यब्रह्मऋत्विजाम्। तत्तन्मूल्यं प्रदातव्यं शक्त्या वाथ प्रदापयेत्। दद्यादन्नं पायसादि ब्राह्मणान्भोजयेच्छतम्। अलाभे सति पंचाशद्दशकं तदलाभतः। सर्वशांतेश्च पठनमाशिषां ग्रहणं तथा। गृही क्षमापयेद्विद्वान्निर्ऋतिः प्रीयतामिति। इति शौनकीये मूलशांतिः। अथाश्लेषाशांतिरप्येवमेव कार्या। तत्र विभवे पूर्वोक्तवत्पंच कुंभाः स्थाप्याः। असंभवे कुंभद्वयम्। एकत्र रुद्रस्थापनम्। द्वितीये आश्लेषाप्रतिमास्थापनम्। अभिमंत्रादि पूर्ववत्। तत्राश्लेषाप्रतिमा सर्पाकारा अधिदैवतबृहस्पतिप्रतिमा प्रत्यधिदैवतपितृप्रतिमा स्थाप्या पूज्या च। "नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति पूजामंत्र इतीरितः। सर्पो रक्तस्त्रिनेत्रश्च द्विभुजः पीतवस्त्रकः। फलकासिधरस्तीक्ष्णो दिव्याभरणभूषितः। एवं ध्यात्वा ततोऽभ्यर्च्य होमकर्म समारभेत्।" अभिषेके विशेषः। "आश्लेषाऋक्षजातस्य मातापित्रोर्धनस्य च। भ्रातृज्ञातिकुलस्थानां दोषं सर्वं व्यपोहतु। पितरः सर्वभूतानां रक्षंतु पितरः सदा। सार्पनक्षत्रजातस्य वित्तं च ज्ञातिबांधवान्। सर्पाधीश नमस्तुभ्यं नागानां च गणाधिप। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वारिष्टप्रशांतये"। इत्यर्घमंत्रः।

"मूलनक्षत्रवत्कुर्यात्सर्पगंडे स्वनामतः"।एतच्च मूलाश्लेषाशांतिकद्वयं विवाहे उपस्थिते श्वशुरस्यश्वश्र्वाश्च सत्त्वे मूलाश्लेषोत्पन्नयोरपि वधूवरयोस्तत्तदरिष्टनिवृत्त्यर्थं विधेयम् । उपलक्षणत्वाच्च ज्येष्ठाविशाखोत्पन्नाया वध्वा वरस्य ज्येष्ठबंधुकनिष्ठबंधुपीडाशांतये च । नारदः । "मूलजा श्वशुरं हंति व्यालजा च तदंगनाम् । ऐंद्री पत्यग्रजं हंति देवरं तु द्विदैवजा । शांतिर्वा पुष्कला चेत्स्यात्तर्हि दोषो न कश्चन" इति । इत्याश्लेषाशांतिः । अथ गंडांतशांतिः । "गंडशांतिं प्रवक्ष्यामि सोममंत्रेण भक्तिमान् । कांस्यपात्रं प्रकुर्वीत पलैः षोडशभिर्नवम् । अष्टाभिश्च चतुर्भिर्वा द्वाभ्यां वा शोभनं तथा । तन्मध्ये पायसं शंखे नवनीतेन पूरिते । राजतं चंद्रमभ्यर्चेत्सितपुष्पसहस्रकैः । दैवज्ञः शुक्लवासास्तु शुक्लमाल्यांबरार्चितः । सोमोऽहमिति संचिंत्य पूजां कुर्यादतंद्रितः । दद्याद्वै दक्षिणामिष्टां गंडदोषप्रशांतये । शुक्लं वागीश्वरं चैव ताम्रपात्रसमन्वितम् । गंडदोषोपशांत्यर्थं दद्याद्वेदविदे शुचिः"।अत्रापि पूर्ववत्प्रतिमाकलशहोमाभिषेकादि कार्यम्।तिथिगंडे त्वनड्वाहं नाक्षत्रे धनुरुच्यते । कांचनं लग्नगंडे तु गंडदोषो विनश्यति । आद्यभागे पितुर्गंडे त्रयाणामभिषेचनम् । इतरत्र शिशोर्मातुरभिषेकं च कारयेत्" । अन्यच्च । "उत्तरातिष्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च । कुर्याच्छांतिं प्रयत्नेन नक्षत्राकारजां बुधः । चित्राद्यर्द्धे पुष्यमध्यद्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये । जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विघाती मातापित्रोर्भ्रातुरप्यात्मनश्च । द्विमासश्चोत्तरादोषः पुष्यश्चैव त्रिमासकः । पूर्वाषाढाष्टमे मासि चित्रा षाण्मासिकं फलम् । नवमासं तथाश्लेषा मूले चाष्टौ समाः स्मृताः । ज्येष्ठा मासे पंचदशे पुत्रदर्शनवर्जनम् । उत्तरे तिलपात्रं स्यात्तिष्ये गोदानमिष्यते । अजा चित्रासु वै देया पूर्वाषाढे तु कांचनम् । यवांश्च व्रीहिमाषांश्च तिलमुद्गांश्च दापयेत् । यथावित्तानुसारेण कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । पितुरायुष्यवृद्ध्यर्थं शांतिरत्र विधीयते" । इति गंडांतादिशांतिः । अथ ज्येष्ठाशांतिः । भरद्वाजः । "ज्येष्ठादौ

मातृजननी मातामहं द्वितीयके। तृतीये मातुलं हंति चतुर्थे जननीं तथा। आत्मानं पंचमे हंति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत्। सप्तमे कुलनाशः स्यादष्टमे ज्येष्ठसोदरः। नवमे श्वशुरं हंति सर्वस्वं दशमे तथा।" इति प्रत्येकं घटिकाषट्कस्य फलमुक्तम्। अत्रापि मूलशांतिवत्सर्वं कार्यम्। तत्र विशेषः। "घटिकैका च मैत्रांते ज्येष्ठादौ घटिकाद्वयम्। तयोः संधिरिति ज्ञेयं शिशुगंडांतमीरितम्। ज्येष्ठांत्यपादस्तु पितुः स्वस्य चाभिविनाशकः। ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हंति शीघ्रं धवाग्रजम्। शांतिं तस्य प्रवक्ष्यामि गंडदोषप्रशांतये"। तत्र चतुर्दिक्षु कुंभचतुष्टयं संस्थाप्य तन्मध्ये शतच्छिद्रं पंचमं कुंभं संस्थाप्य पूर्ववत्पूजादि विधाय तत्र। "वज्रांकुशधरं देवमैरावतगजान्वितम्। कुर्याच्छचीपतिं रम्यं देवेंद्रं सुरनायकम्। शालितंडुलसंपूर्णकुंभस्योपरि पूजयेत्। इंद्रायेंदो मरुत्वत इति मन्त्रेण वाग्यतः। पूजयेद्विधिना सम्यग्लोकपालगणान्वितम्। रक्तवस्त्रद्वयोपेतं देवराजं शचीपतिम्। पूजयेद्वारुणैर्मंत्रैः कुंभान्धीमान्प्रयत्नतः। त्वं नो अग्ने जपेदादौ स त्वन्नोऽपि द्वितीयकम्। समुद्रज्येष्ठा इति चेमं मे गंगे चतुर्थकम्। पूजयेद्वस्त्रगंधाद्यैश्चतुरः कलशानपि। जपं कुर्युः प्रयत्नेन मन्त्रैरेभिर्द्विजोत्तमाः। आनो भद्रा जपं चादौ भद्रा अग्ने द्वितीयकम्। इंद्रसूक्तं रुद्रजाप्यं जपेन्मृत्युंजयं ततः। इंद्रं संपूज्य देवेशं वरुणं कुंभसंस्थितम्। सुसंकल्पविधानेन होमकर्म ततश्चरेत्। समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षस्य शतमष्टोत्तरं शतम्। सर्पिषा चरुणा चैव मूलमंत्रेण वाग्यतः। हुनेज्जाप्यं च तेनैव यत इंद्रभयेति च। तिलान्व्याहृतिभिर्हुत्वा शतमष्टोत्तरं पृथक्। ततोऽभिषेकः। ततो रूपं रूपमिति मन्त्रेण तच्चक्षुरिति मंत्रेण आज्यावलोकनम्। पुनर्देवतापूजनं कृत्वा। "नमोऽस्तु सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गंडदोषप्रशांतये। अष्टोत्तरशतं संख्यां कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्।" अन्यत्सर्वं तु पूर्ववत्। इति ज्येष्ठाशांतिः। दिनक्षये व्यतीपाते व्याघाते विष्टिवधृतौ। शूले गंडे च परिघे वज्रे च यमघंटके। कालदंडे मृत्युयोगे दग्धयोगसमन्विते। तस्मिन्गंडदिने प्राप्ते प्रसूतिर्यदि

जायते। अतिदोषकरी प्रोक्ता तत्र पापयुते सति। विचार्य तत्र दैवज्ञः शांतिं कुर्याद्यथाविधि। यजनं देवतानां च ग्रहाणां चैव पूजनम्। दीपं शिवालये भक्त्या गोघृतेन प्रदापयेत्। अभिषेकं शंकराय अश्वत्थस्य प्रदक्षिणम्। अभीष्टफलसिद्ध्यर्थं कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्। गाणपत्यं पुरुषसूक्तं सौरं मृत्युंजयं शुभम्। शांतिजाप्यं ततश्चैव कृत्वा मृत्युंजयी भवेत्। इत्युत्तरगार्ग्ये दुष्टयोगशांतिः। कुमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्च वैधृतिः। संक्रांतिश्च रवेस्तत्र जातो दारिद्र्यकारकः। नवग्रहमखं कुर्यात्तस्य दोषस्य शांतये। प्रथमं गोमुखाज्जन्म ततः शांतिं समाचरेत्। गृहस्य पूर्वदिग्भागे गोमयेनानुलिप्य च। अलंकृते सुदेशे तु व्रीहिराशिं प्रकल्पयेत्। पञ्चद्रोणमितं धान्यं तदर्धं तंडुलेन च। तदर्धं तु तिलैः कुर्यादन्योन्योपरि कल्पयेत्। द्रव्यत्रितयराशौ तु अष्टपत्रं लिखेद्बुधः। पुण्याहं वाचयित्वा तु आचार्यं वरयेत्पुरा। राशौ प्रतिष्ठितं कुंभमव्रणं सुमनोहरम्। तीर्थोदकेन संभृत्य समृदौषधिपल्लवम्। पंचगव्यं पंचरत्नं वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्। तस्योपरि न्यसेत्पात्रं सूक्ष्मवस्त्रेण संयुतम्। प्रतिमां स्थापयेत्पश्चादधिप्रत्यधिदेवताम्। चंद्रादित्याकृती पार्श्वे मध्ये वैधृतिमर्चयेत्। एवमेव व्यतीपातशांतौ संक्रमणस्य च। भानोरुत्तरतो रुद्रमग्निं दाक्षिणतो यजेत्। निष्कमात्रेण चार्धेन पादेनापि स्वशक्तितः। प्रतिमाः कारयेद्धीमांस्तत्तल्लक्षणलक्षिताः। प्रतिमापूजनार्थाय वस्त्रयुग्मं निवेदयेत्। अधिदैवं भवेत्सूर्यश्चंद्रः प्रत्याधिदैवतम्। तत्तद्व्याहृतिपूर्वेण तत्तन्मंत्रेण पूजयेत्। त्रियंबकेन मन्त्रेण रुद्रपूजां समाचरेत्। उत्सूर्य इति मंत्रेण सूर्यपूजां समाचरेत्। आप्यायस्वेति मंत्रेण सोमपूजां समाचरेत्। तत्राष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा अष्टाविंशतिसंख्याजपं सर्वसौरजपं च आनो भद्रा भद्रा अग्नेरिति सूक्ते पुरुषसूक्तं त्रियंबकम्० एतान्मंत्रान्कुंभान्स्पृष्ट्वा चतुर्दिक्षु जपेयुः। "त्रियंबकेन मन्त्रेण समिदाज्यचरून्हुनेत्। अष्टोत्तर-

१ प्रधानप्रतिमां यजेत् इति पाठः।

सहस्रम् अष्टोत्तरशतम् अष्टाविंशतिर्वा । मृत्युंजयेन मंत्रेण तिलहोमं समाचरेत । ततः समुद्रज्येष्ठा इति सूक्तेन आपो हिष्ठेति तृचेन च । अक्षीभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिः त्रियंबकेन उत्सूर्येति आप्यायस्वेति वैदिकमंत्रैः सुरास्त्वामभिषिंचंत्वित्यादिकैः पौराणमंत्रैश्चाभिषेकं कुर्यात् । तत आज्यावेक्षणम् । अन्यद्दक्षिणादानादिकं पूर्ववत् । इत्युत्तरगार्ग्ये व्यतीपातवैधृतिसंक्रांतिशांतिः । अथ कुहूसिनीवालीदर्शशांतिः । तत्र यस्याः कस्याश्चिदमावास्यायाः अष्टौ भागान्कृत्वा प्रथमविभागे चंद्रदर्शनमस्ति न वेति विचार्यम् । यदा चंद्रदर्शनं तदा सिनीवाली यदा चंद्रादर्शनं तदा दर्शः सकलचंद्रक्षयस्तदा कुहूरित्यर्थः । तदुक्तं छंदोगपरिशिष्टे । इंदुक्षयकालः श्राद्धकाल इति प्रस्तुत्येंदुक्षयकालपरिगणनमुक्तम् । " अष्टमेंऽशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चंद्रमाः । अमावास्याष्टमे भागे पुनः किल भवेदणुः । अत्रेंदुराद्ये प्रहरे च तिष्ठेच्चतुर्थभागो न कलावशिष्टः । तदंत एव क्षयमेति कृत्स्न एवं हि ज्योतिश्चक्रविदो वदंतीति । एतत्कारिकाव्याख्यानं तद्भाष्यकारेण कृतम् । प्रहरनवकात्मकश्चंद्रक्षय काल इति । तत्रामायाः सप्तमाष्टमप्रहरौ कृत्स्नः क्षयकालः । चतुर्दशीशेषयामदर्शादियामौ च चंद्रसूक्ष्मताकाल इति । तत्रायमत्र विषयविवेकः । यस्याममावास्यायां प्रथमप्रहरे शास्त्रात्प्रत्यक्षतो वा चंद्रदर्शनं स्यात्सा सिनीवाली सर्वदा सिद्धा । तत्रोत्पन्नस्य सिनीवालीशांतिर्विधेया । अथ तस्यामेवामावास्यायां यदा नष्टेंदुकलात्वं स च कृत्स्नक्षयकालोऽमावास्यायामंतिमक्षण एव । तस्य च संक्रांतिसमयवदतिसूक्ष्मत्वेन दुर्ज्ञेयत्वात् । अमावास्यायाः सप्तमाष्टमप्रहरयोः कृत्स्नक्षयकालस्य भाष्यकारेण परिभाषितत्वात् । सप्तमाष्टमप्रहरात्मकः कालः कुहूशब्दवाच्यस्तत्रोत्पन्नस्य कुहूशांतिः । पुनस्तस्यामेवामावास्यायां प्रथमप्रहरानंतरं सप्तमप्रहरादर्वाक्प्रहरपंचात्मकः कालो दर्शशब्दवाच्य इति । तत्रोत्पन्नस्य दर्शशांतिर्विधेयेति । एवमेकस्यामेवामावास्यायां कालभेदेन त्रयं संभवति । यदा त्वमावास्यायां चंद्र-

दर्शनाभावस्तदा द्वयमेव दर्शत्वकुहूत्वरूपं संभवतीति। अत्र केचिच्चतुर्दशीशेषे चंद्रदर्शने सति परदिने याऽमावास्या सा सिनीवाली इत्याहुः। तन्न दृष्टश्चंद्रो यस्यामिति अन्यपदार्थस्य अमावास्यारूपस्यैव सामानाधिकरण्येन ग्रहणात्। किंच। सिनीशब्देन श्वेता चंद्रकला। वर्णवाचिनः सितशब्दाद्वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो न इति ङीप्नकारौ सिनी तां वलते प्राप्नोतीति सिनीवालीति व्युत्पत्तिश्च। चतुर्दश्युदितश्चंद्राश्रयायाममावास्यायां न युज्यते इति च। तस्माद्दृष्टेंदुः सिनीवालीत्यमावास्यैवाभिधीयत इत्येव ज्यायः अथ गोलगणितविदोऽन्यथा समादधुः। तत्र स्याद्दृष्टेंदुः सिनीवालीत्यादावुदयास्ताधिकारोक्तरीत्या दृक्कर्मद्वयसंस्कृतस्य दर्शनयोग्यत्वे सति प्राक् क्षितिजक्रांतिवृत्तसंबंधवत्त्वं ग्रहादेर्दर्शनाशब्दवाच्यं मेघाद्यावरणे तु शास्त्रीयदर्शने दृशिर्वर्त्तते। आत्मा द्रष्टव्य इत्यादिवत्। तथैव दर्शनायोग्यत्वे सति प्राक् क्षितिजसंबंधवत्त्वमदर्शनशब्दवाच्यमित्यदर्शनलक्षणम्। अतश्चंद्रदर्शनलक्षणवत्यमावास्या सिनीवाली नाम चंद्रादर्शनलक्षणवत्यमावास्या कुहूर्नाम। लक्षणद्वयानाक्रांताऽमावास्या दर्शशब्दवाच्येति। अयमाशयः। यदामावास्या सूर्योदयात्प्राक् घटिकात्रयवती तदा दृक्कर्मसंस्कारवशेन चंद्रस्य दृश्यत्वमागतं चेत्तदा सा संपूर्णाऽमावास्या सिनीवाली नाम। तादृश्याममायां द्वितीयसूर्योदयावधिकायामुत्पन्नस्यारिष्टशांतये सिनीवालीशांतिस्तत्फलं चादेश्यम्। अथ तिथिवृद्धौ वा तस्या अमावास्याया द्वितियसूर्योदयानंतरमवशिष्टामावास्याघटीषूत्पन्नस्य कुहूशांतिरेव। चंद्रादर्शनलक्षणसत्त्वात्। यदि सैवामावास्या सूर्योदयात्प्राग्घटिकात्रयं चतुष्टयं वा प्रतिपत्संबद्धा तदा सिनीवाल्येव। अथ तादृश्यां न्यूनायामधिकायां वाऽमावास्यायां तु दृक्कर्मसंस्कारवशेन चंद्रस्यादृश्यत्वमागतं सामावास्या संपूर्णा कुहूर्नाम। चंद्रादर्शनलक्षणसत्त्वात्। तत्रापि कुहूशांतिरादेश्या। यदा तु सूर्योदयानंतरं कियतीषु द्वित्रिघटीषु अतिक्रांतासु अमावास्याप्रवृत्तिः। पूर्वं चतुर्दश्येवास्थिता स्तस्यामुषसि दृक्कर्मव-

शतश्चंद्रो दृष्टोऽमा वादर्शि तथाप्यमावास्यायां चंद्रदर्शनलक्षणानाक्रां-तत्वात्सा संपूर्णामावास्या दर्शो नाम। तत्र दर्शजननशांतिर्विधेयेति। एवममावास्याभेदेन सिनीवालीकुहूदर्शरूपपक्षत्रयं सावकाशमिति गो-लज्ञानां मतम्। अथ प्रकारांतरेण सिनीवाली सर्ववादिसिद्धा सैव कुहूस्तु पारिभाषिकी। यदाह वसिष्ठः। "नक्षत्रे यस्य दर्शांतो विषनाड्यां भवेद्यदि। कुहूयोग इति ख्यातो व्याधिमृत्युभयादिकृत्" अयमर्थः तस्मिन्नक्षत्रे या विषनाड्य उक्तास्तस्मिन्काले यदि दर्शस्य चर-मघटिका भवेत्तन्नक्षत्रं च यस्य पुरुषस्य जन्मनक्षत्रं जन्मकाले कालां-तरे वा स्यात्तस्य पुंसो व्याधिमृत्युकृत्कुहूयोगो ज्ञेयः। तत्र कुहू-जननफलं शांतिश्च स्यात्। कालांतरेऽपि कुहूयोगसंभवे शांतिर्विधेया अत एव जगन्मोहने। "यस्य जन्मर्क्षगश्चंद्रो विषनाड्यां कुहूर्भवेत्। अभिचारेण किं तस्य स्वयमेव मरिष्यति॥" इति। अतो विषघटिकातः पूर्वकालो दर्शशब्दवाच्य इति। एवं प्रकारत्रयेण सिनीवालीकुहूद-र्शानां भेद उपपादितस्तत्र यथासंप्रदायं व्यवस्थेत्यलमतिप्रसंगेन। अथ शांतिप्रकारः। सिनीवाल्यां प्रसूता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा। गवाश्वमहिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत्। ये वसंति द्विजाश्चान्ये स्वप्रसादोपजीविनः। वर्जयेत्तानशेषांस्तु पशुपक्षिमृगादिकान्। द्विजाः पक्षिणः। कुहूप्रसूतिरत्यर्थं सर्वदोषकरी मता। यस्य प्रसूतिरे-तेषां तस्यायुर्धननाशिनी। नारीं विना च शेषाणां परित्यागो विधीयते। परित्यागात्तत्र शांतिं कुर्याद्भक्त्या विचक्षणः। प्रतिमां कारयेच्छंभोश्चतुर्भुजसमन्विताम्। त्रिशूलखड्गवरदाभयहस्तां यथा-क्रमात्। श्वेतवर्णां श्वेतपुष्पां श्वेतांबरवृषस्थिताम्। त्र्यंबकेन मंत्रेण पूजां कुर्याद्यथाविधि। इंद्रश्चतुर्भुजो वज्रांकुशचापससायकः। रक्तवर्णो गजारूढो यत इंद्रेति मंत्रतः। पितरः कृष्णवर्णाश्च चतुर्ह-स्ता विमानगाः। यष्ट्यक्षसूत्रकमंडल्वभयानां च धारिणः। ये स-त्या इति मंत्रेण पूजां कुर्यादनंतरम्। कलशस्थापनपूजादि पूर्ववत्। समिदाज्यचरोर्होमं तिलमाषैश्च सर्षपैः। अश्वत्थप्लक्षपालाशसमिद्भिः

खादिरैः शुभैः। अष्टोत्तरशतं मुख्यं प्रत्येकं जुहुयाद्बुधः। त्रैयंबकेन मंत्रेण तिलान्व्याहृतिभिर्हुनेत्। शंकरस्याभिषेकं च कुर्यादाज्यावलोकनम्। अन्यत्सर्वमभिषेकादि पूर्ववत्। इति सिनीवालीकुहूशांतिः। अथ दर्शशांतिः। अथातो दर्शजातानां मातापित्रोर्दरिद्रता। तद्दोषपरिहाराय शांतिं वक्ष्यामि नारद। तत्र संकल्पं विधाय पुण्याहं वाचयित्वा सर्वतोभद्रमंडलं लिखित्वा तन्मध्ये कलशं संस्थाप्य। तन्मध्ये निक्षिपेद्द्रव्यं दधिक्षीरघृतादिकम्। न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थाः सचूता निंबकास्तथा। एतेषां वृक्षमूलानां त्वगादीन्पल्लवांस्तथा। पंचरत्नानि निक्षिप्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्। तत्र सर्वे समुद्रा इति। आपो हिष्ठा तृचेनेति कयानश्चित्र इत्यृचा। यत्किंचेदमृचा चैव समुद्रज्येष्ठा इत्यृचा। अभिमंत्र्योदकुंभं तमग्नेः पूर्वे निधापयेत्। दर्शस्य देवता याश्च सोमसूर्यस्वरूपकाः। प्रतिमां स्वर्णजां नित्यं राजतीं ताम्रजां तथा। आप्यायस्वेति मंत्रेण सविता पश्चात्तमेव च। उपचारैः समाराध्य ततो होमं समाचरेत्। समिधश्च चरुद्रव्यं क्रमेण जुहुयाद्गृही। हुनेत्सवितृमंत्रेण सोमो धेनुं च मंत्रतः। अष्टोत्तरशतं वापि अष्टाविंशतिसंख्यया। अभिषेकादि पूर्ववत्। हिरण्यं रजतं चैव कृष्णा धेनुश्च दक्षिणा। ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र कारयेत्स्वस्तिवाचनम्। इति दर्शशांतिः। कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां प्रसूतेः षड्विधं फलम्। चतुर्दशीं च षड्भागां कुर्यादादौ शुभं स्मृतम्। द्वितीये पितरं हंति तृतीये मातरं तथा। चतुर्थे मातुलं हंति पंचमे वंशनाशनम्। षष्ठे तु धनहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शांतिं कुर्याद्विधानतः। प्रतिमां कारयेच्छंभोः कर्षमात्रसुवर्णतः। तदर्द्धार्द्धेन वा कुर्यात्सर्वलक्षणसंयुताम्। वृषभे च समासीनं वरदाभयपाणिकम्। शुद्धस्फटिकसंकाशं श्वेतमाल्यांबरान्वितम्। त्रैयंबकेन मंत्रेण पूजां कुर्याद्विधानतः। तत्र मूलशांतिवत्कलशस्थापनादि कृत्वा तत्र शंभुपूजां विधाय। तत्र आवाह्य वारुणैर्मंत्रैरनेन च विधानतः। इमं मे वरुणेत्यनया तत्त्वा यामीत्यृचा तथा। त्वं नो अग्ने इत्यनया सत्वं

न इति मन्त्रतः। आग्नेयं कुंभमारभ्य पूजां कुर्याद्यथाक्रमम्। आनो भद्राश्च सूक्तेन भद्रा अग्नेश्च सूक्तकम्। जप्त्वा पुरुषसूक्तं च कद्रुद्रं तु क्रमाज्जपेत्। ईश्वरस्याभिषेकं च ग्रहपूजां च कारयेत्। समिदाज्य-चरूंश्चैव तिलमाषांश्च सर्षपान्। अश्वत्थप्लक्षपालाशसमिद्भिः खादिरैः शुभैः। अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा। अष्टाविंशतिभिर्वापि होमं कुर्यात्पृथक् पृथक्। त्र्यंबकेन मन्त्रेण तिलान् व्याहृतिभिः क्रमात्। ग्रहा एवं च होतव्याश्चास्मदुक्तविधानतः। अन्यत्सर्वमाज्यावलोकनादि पूर्ववत्। इति कृष्णचतुर्दशीजननशांतिः। एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः। प्रसूतिश्च तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चयात्। तत्र शांतिं प्रवक्ष्यामि सर्वाचार्यमतेन तु। अग्नेरीशानभागे तु नक्षत्रप्रतिमां ततः। तन्नक्षत्रोक्तमंत्रेण चार्चयेत्कलशोपरि। रक्तवस्त्रेण संछाद्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्। स्वस्वशाखोक्तमार्गेण कुर्यादग्निमुखं ततः। अनेनैव तु मंत्रेण हुनेदष्टोत्तरं शतम्। प्रत्येकं समिदन्नाद्यैः प्रायश्चित्तांतमेव च। अभिषेकं ततः कुर्यादाचार्यः पितृपुत्रयोः। वस्त्रालंकारगोदानैराचार्यं पूजयेत्ततः। ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यान्माषत्रयसुवर्णकम्। देवताप्रतिमादानं धान्यवस्त्रादिभिः सह। यानशय्यासनादींश्च दद्यात्तद्दोषशांतये। भोजयेद्ब्राह्मणान्सर्वान्वित्तशाठ्यविवर्जितः। इत्येकनक्षत्रशांतिः। अत्रैकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोरित्यत्र भ्राता च भ्राता च भ्रातराविति भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्यामिति एकशेषे सोदरयोर्भ्रातृभगिन्योरेव निषेधः स्यान्न तु पुत्रभ्रात्रोः। एवं पितृपुत्रयोरित्यत्रापि पिता च पुत्रश्चेति द्वंद्वे पितापुत्रयोरेकनक्षत्रजनननिषेधः स्यान्नतु मातृपुत्रयोः। नच माता च पिता च पितरौ पिता मात्रेत्येकशेषे तथा पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ पितरौ च पुत्रौ चेति द्वंद्वे पितृपुत्राणामिति बहुवचनं स्यात्। तथापि वचनांतरानुरोधात् इष्टविषयोऽपि संगृहीतो भविष्यति। यदाह वसिष्ठः। "पित्रोस्तु जन्मनक्षत्रे जातस्तु पितृमातृहा। जन्मर्क्षंशे च तल्लग्ने जातः सद्यो मृतिप्रदः। देवकीर्तिः। यद्येकस्मिन्धि-

ष्ण्ये जायेते दुहितरोऽथवा पुत्राः। पित्रोरंतकराः स्युर्यद्यपरे प्रीतिरतुला स्यात्। अपरे अन्यनक्षत्रे। गर्गः। यस्य वै जन्मनक्षत्र जायेद्भ्राता सुतोऽपि वा। सजातीयः सजात्या वा सोऽस्य प्राणान्प्रसाधयेदिति। अथ मूलस्योपलक्षणत्वेन सर्वशांतिशेषभूतो गोमुखप्रसवोऽभिधीयते। गर्गः। प्रणिपत्य रविं वक्ष्ये प्रायश्चित्तमनुस्मरन्। सर्वारिष्टविनाशाय यदुक्तं ज्यौतिषार्णवे। पित्ररिष्टे सुतारिष्टे मात्ररिष्टे तथैव च। पौष्णाश्विन्योर्गुरौ सार्पमघाचित्रेंद्रमूलभे। एषु ऋक्षेषु जातस्य कुर्याद्गोजननं तथा। जन्मर्क्षे वा त्रिजन्मर्क्षे शुभवारे शुभे दिने। कृत्वाभ्यंगादिकं सर्वं गृहालंकारपूर्वकम्। गोमयेनोपलिप्याथ यथावित्तानुसारतः। नवशूर्पं तु तन्मध्ये रक्तवस्त्रं प्रसारयेत्। स्थापयित्वा शिशुं तत्र पुनः सूत्रेण वेष्टयेत्। प्राङ्मुखस्तमवाक्पादं तिलदर्भगतं शिशुम्। गोमुखं दर्शयित्वा तु पुनर्जातं तु गोमुखात्। विष्णुर्योनीति सूक्तेन गव्येन स्नापयेच्छिशुम्। गवामंगेषु मंत्रेण गवामंगेषु संस्पृशेत्। विष्णोः श्रेष्ठेन मन्त्रेण गोप्रसूतं तु बालकम्। आचार्यस्तु समादाय पश्चान्मात्रेऽददात्तदा। माता जघन्यभागस्था शिशुमानीय तन्मुखात्। ततः पित्रे तदा दद्यात्ततो मात्रे प्रदापयेत्। वस्त्रे संस्थाप्य तु पिता पुत्रस्य मुखमीक्षयेत्। गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। आपोहिष्ठादिभिर्मंत्रैरभिषिंचेत्ततः शिशुम्। मूर्ध्नि चाघ्राय तं पुत्रं तन्मंत्रेण तदा पिता। अंगादंगात्संभवसि हृदयादभिजायसे। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्। मूर्धनि त्रिरवघ्राय तं शिशुं स्थापयेत्ततः। पुण्याहं वाचयेत्पश्चाद्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः। दरिद्रायाथ विप्राय तां गां चाभ्यर्च्य दापयेत्। गोवस्त्रस्वर्णधान्यादि दद्यादर्कादितः क्रमात्। यथाशक्ति धनं दद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तथा पिता। ततो होमं प्रकुर्वीत स्वस्वशाखोक्तमार्गतः। उल्लेखनादिकं कृत्वा चाज्यभागांतमाचरेत्। होमस्येशानदिग्भागे धान्योपरि शुभं घटम्। सपंचगव्यं संस्थाप्य तिलांस्तत्र विनिक्षिपेत्। क्षीरिद्रुमकषायांश्च पंचरत्नानि निक्षिपेत्। वस्त्रयुग्मेन संछाद्य

क्षीरादिभिरथार्चयेत् । विष्णुं वरुणमभ्यर्च्य प्रतिमां च विधानतः ।
आपोहिष्ठेति तिसृभिरप्सु मे सोम इत्यथ । तद्विष्णोः परमं पदमक्षी-
भ्यामिति सूक्ततः । ऋग्भिरृग्भिः प्रत्यृचं च अष्टाविंशतिसंख्यया ।
अशक्तौ चाष्टसंख्यं वा दधिमध्वाज्यसंयुतम् । आदित्यादिग्रहाणां
च होमं कुर्यात्समन्त्रकम् । इति गोमुखप्रसवशांतिः । अथ प्रसं-
गात्रीतरशांतिः । सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्रये वा सुतो यदि । माता-
पित्रोः कुलस्यापि तदारिष्टं महद्भवेत् । ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं
वा सुमहद्भवेत् । तत्र शांतिं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः । जात-
स्यैकादशे वापि द्वादशाहे शुभे दिने । आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहय-
ज्ञपुरःसरम् । सह वा ग्रहयज्ञः स्याद्यथावित्तानुसारतः । ब्रह्मविष्णु-
महेशेंद्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः । पूजयेद्धान्यराशिस्थकलशोपरि
शक्तितः । पञ्चमे कलशे रुद्रं प्रजपेद्रुद्रसंख्यया । रुद्रसूक्तानि चत्वा-
रि शांतिसूक्तानि सर्वशः । द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिः
समाहितः । आचार्यो जुहुयादत्र समिदाज्यतिलांश्चरुम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा विंशतिं तु वा । देवताभ्यश्च-
तुर्वक्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम् । ब्रह्मादिमंत्रैरिंद्रस्य यत इंद्र भयामहे ।
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः । अभिषेकं कुटुंबस्य
कृत्वाचार्यं प्रपूजयेत् । हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा
ततः । प्रतिमा गुरवे देया उपस्करसमन्विता । कांस्याज्यवीक्षणं
कृत्वा शांतिपाठं च कारयेत् । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दीनाना-
थांश्च तर्पयेत् । एवं शांतिविधानेन सर्वारिष्टं प्रलीयते । इति त्रीतर-
शांतिः । अथ चंद्रसूर्यग्रहणसमयजननशांतिः । ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य
प्रसूतिर्यदि जायते । व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्श-
नात् । शांतीस्तेषां प्रवक्ष्यामि नराणां हितकाम्यया । यस्मिन्नृक्षे
विशेषेण ग्रहणं संप्रजायते । तदृक्षाधिपते रूपं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् ।
यथाशक्त्यनुसारेण वित्तशाठ्यं न कारयेत् । सूर्यग्रहे सूर्यरूपं सुव-
र्णेन स्वशक्तितः । चांद्रं चंद्रग्रहे धीमान् रजतेन विशेषतः । राहु-

रूपं प्रकुर्वीत नागेनैव विचक्षणः । नागेन शीसकेन । शुचौ देशे प्रयत्नेन गोमयेन प्रलेपयेत् । तस्योपरि न्यसेद्धीमानन्नं वस्त्रं सुशोभनम् । त्रयाणां चैव रूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत् । रक्ताक्षतं रक्तगंधं रक्तपुष्पांवराणि च । सूर्यग्रहे प्रदातव्यं सूर्यप्रीतिकरं च यत् । श्वेतवस्त्रं श्वेतमाल्यं श्वेतगंधाक्षतादिकम् । चंद्रग्रहे प्रदातव्यं चन्द्रप्रीतिकरं च यत् । राहवे चैव दातव्यं कृष्णपुष्पांवरादि च । दद्यान्नक्षत्रनाथाय श्वेतगंधानुलेपनम् । सूर्यं संपूजयेद्धीमानाकृष्णेनेति मन्त्रतः । चंद्रग्रहे तथा सम्यगाप्यायस्वेति मन्त्रतः । स्वर्भानोरिति मंत्रेण राहुं यत्नेन पूजयेत् । एवं संपूजयेद्धीमान्समिद्भिश्चार्कसंभवैः । चन्द्रग्रहे च पालाशैः समिद्भिर्जुहुयान्नरः । दूर्वाभिर्जुहुयाद्धीमान्राहोः संप्रीणनाय च । समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षोत्थैर्भेशाय जुहुयाद्बुधः । भेशाय नक्षत्राधिपतये । आज्येन चरुणा चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः।पंचगव्यैः पंचरत्नैः पंचत्वक्पंचपल्लवैः । जलैरोषधिकल्कैश्च सहितैः कलशोदकैः। ओषधिकल्कैः सर्वौषधिकल्पैः। अभिषेकं प्रकुर्वीत यजमाने प्रयत्नतः।मंत्रैर्वारुणदैवत्यैरापोहिष्ठादिभिः सह । इमं मे गंगे परतस्तत्त्वा यामीति मन्त्रकैः । अभिषेके निवृत्ते तु यजमानः समाहितः । आचार्यं पूजयेत्पश्चात्सुशांतो विजितेंद्रियः । ततो दद्यात्प्रयत्नेन भक्त्या प्रतिकृतित्रयम् । गां चैव दक्षिणां दद्याद्यजमानः समाहितः । अनेन विधिना शांतिं कृत्वा सम्यग्विशेषतः । अकालमृत्युं शोकं च व्याधिपीडां च नाप्नुयात् । सौख्यं सौमनसं नित्यं सौभाग्यं लभते नरः । इत्थं ग्रहणजातानां सर्वारिष्टविनाशनम् । कथितं भार्गवेणेदं शौनकाय महात्मने । इति शौनकोक्तग्रहणजननशांतिः । अथ ज्वराद्युत्पत्तिकालीननक्षत्रशांतिः । तत्र साधारणो विधिः । यस्मिन्नक्षत्रे ज्वरादिपीडा भवति तन्नक्षत्राधिदेवताप्रतिमां सुवर्णेन कारयित्वा अमुकनक्षत्रसंभूतव्याधिशांत्यर्थं नक्षत्रशांतिं करिष्य इति संकल्प्य शुचि प्रदेशे गोमयेनोपलिप्ते तंडुलैश्चतुरस्रं मंडलं निर्माय तन्मध्ये तत्तद्देवतावर्णवस्त्रद्वयवेष्टितग्रंथिं चं-

दनादिचार्चितं कलशं धान्यस्योपरि विन्यस्य तत्र सर्वौषधीः पंच रत्नानि पंच गव्यानि सप्त मृत्तिकाः पंच पल्लवान्स्वस्वमंत्रेण निक्षिप्य सर्वे समुद्रा इति तत्र तीर्थान्यावाह्य तत्त्वा यामीति वरुणमावाह्य संपूज्य स्वस्वगृह्योक्तविधिनाग्निं प्रतिष्ठाप्य आज्यभागांते तत्तन्नक्षत्राधिदेवतामंत्रेण तन्नक्षत्रपूर्वोत्तरनक्षत्रदेवतामंत्रेण तत्तद्द्रव्येण च होमं कृत्वा तेन वरुणकलशेन यजमानाभिषेके विहिते ताः प्रतिमा रोगिब्राह्मणाय दद्यात् । असौ साधारणो विधिः । उक्तं च । " यस्मिन्नृक्षे भवेत्पीडा तन्नक्षत्रस्य देवताम् । सुवर्णनिर्मितां कृत्वा पूजयेत्प्रयतः शुचिः । गोमयेनानुलिप्ते वै मंडलं शुभलक्षणम् । कीर्तितं चतुरस्रं च तंदुलैश्च कृताकृतैः । कृत्वा तु स्थंडिलं तत्र यत्नतः कृष्णया मृदा । मृत्पार्श्वे च सुधीः कुर्यात्तंदुलानां महाचयम् । तत्र प्रमाणं खारी वा द्रोणा वा दश शक्तितः । अभावे पंच वा द्रोणा द्रोणा वा तदभावतः। ईशानकोणदेशे तु कलशं स्थापयेत्सुधीः । निधाय द्रविणं तत्र कलशे शक्त्यपेक्षया । पीठं तु पूर्वतः स्थाप्यं नव्यवस्त्रेण संयुतम् । स्वस्तिकं तंदुलानां च शुभानां तत्र संलिखेत् । तन्मध्ये देवतास्तिस्रो नक्षत्रत्रितयस्य वै । यस्मिन्नृक्षे भवेद्रोगस्तस्य पूर्वापरे सुधीः । उडूनि पूजयेद्यत्नादधिप्रत्यधिदैवते । देवता यस्य ऋक्षस्य मन्त्रस्तल्लिंग एव च । इत्थं च तस्य यत्प्रोक्तं प्रभवं प्रकृतं तथा । तत्सर्वं विदुषानीय होमं तत्र प्रकल्पयेत् । स्वगृह्योक्तविधानेन कुर्यादग्निमुखं सुधीः । कलशं जलपूर्णं च वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् । निधाय चौषधीस्तत्र पंचपल्लवसंयुताः । सप्तस्थानमृदः कुंभे आलवालं प्रकल्पयेत् । इमं मे वरुण इत्येवं जलमंत्रेण वा पुनः । सर्वे समुद्राः सरित इति मंत्रं च संस्मरेत् । यच्चिद्धि ते विशो यथेत्यादिसूक्तं जपेत्पुनः। आवाहयेद्घटे देवं वरुणं पयसां पतिम् । एवं नक्षत्रशांत्यर्थं विदध्यात्पूर्वपीठिकाम् । सामान्योऽयं विधिः प्रोक्तो नक्षत्राणां प्रपूजने । सर्वौषधीनां दुष्प्राप्तौ भवेदेका शतावरी । सर्वेषामपि गंधानामभावे चंदनं मतम् । शतपत्रं सुमनसां धूपाभावे च गुग्गुलुः । नैवेद्याना-

मभावे तु पायसं सघृतं स्मृतम् । मंत्राणामप्यभावे तु गायत्रीमंत्र उत्तमः । होमद्रव्यस्य दुष्प्राप्तौ तिलाः प्रोक्ता मनीषिभिः । अष्टोत्तरसहस्रं च तथा शतमुदाहृतम् ॥ ” इति । अथ नक्षत्रदेवताध्यानानि । “ देवते अश्विनौ तत्र द्विभुजौ शुक्लवर्णकौ । सुधाकलशसंयुक्तौ कमंडलुधरौ शुभौ १ यमस्तु देवता तत्र कृष्णवर्णो द्विबाहुकः । लुलायवाहनः श्रीमान्पाशदंडधरः प्रभुः २ अग्निस्तु देवता तत्र रक्तवर्णोऽजवाहनः । चतुर्भुजो घृतामत्रस्रुवस्रुग्वरदाभयः ३ रक्तवर्णश्चतुर्बाहुर्हंसारूढश्चतुर्मुखः । पद्माक्षसूत्रवरदाभयहस्तो निरामयः ४ सोमो हि देवता तस्य श्वेतवर्णः शुभाकृतिः । दशाश्वरथमारूढः श्वेताश्वोऽपि निगद्यते ५ रुद्रो हि देवता यस्य वृषारूढश्चतुर्भुजः । त्रिशूलखट्वावरदाभयहस्तश्च कीर्तितः ६ चतुर्भुजादितिः पीता साक्षसूत्रकमंडलुः । वरदाभयहस्ता सा कार्या स्वर्णमयी शुभा ७ चतुर्भुजः पीतवर्णो देवतास्य बृहस्पतिः । दंडाक्षसूत्रपाणिस्तु साभयः सकमंडलुः ८ सर्पस्तु देवता तत्र महामंडलरूपधृक् । सुविस्तृतशिरश्चंडो मर्कपिंगललोचनः ९ पितरो देवतास्तत्र कृष्णवर्णाश्चतुर्भुजाः । भद्राक्षसूत्राभयदाः कमंडलुधराः शुभाः १० पूर्वाफाल्गुनिकायां च भगो देवः प्रकीर्तितः । रक्तवर्णोऽब्जासीनो द्विभुजो भवपद्मकः ११ अर्यमा देवता पद्ममध्यस्थः पद्मवर्णकः । पद्माभयकरः श्रीमान्स्वर्णमूर्तिर्महाद्युतिः १२ सविता देवता तस्य सप्ताश्वरथवाहनः । द्विभुजो रक्तवर्णः स्यात्पद्मासनसमाश्रयः १३ त्वष्टा पद्मस्थितश्चित्रवर्णः स्यात्स चतुर्भुजः । पद्माक्षसूत्रवलयः पद्माभयकरः प्रभुः १४ वायुश्च देवता तत्र मृगारूढश्च मोचकः । अजाचर्मधरः श्रीमान्द्विभुजः परिकीर्तितः १५ इंद्राग्नी देवता तत्र गजाजावाहनावुभौ । चतुर्बाहू रक्तवर्णौ निजशस्त्रधरौ तथा १६ चापांकुशाभयैर्युक्तौ तथा समविराजितौ । पद्मासनो रक्तवर्णो मित्रस्तस्यानुदेवता । पद्माभयकरः श्रीमान् द्विभुजः परिकीर्तितः १७ शक्र ऐरावतारूढो दिव्यसिंहासनो विभुः । श्वेतवर्णो वज्रधरोऽभय-

पाणिर्महाभुजः १८ निर्ऋतिर्देवता तत्र प्रेतारूढश्च मोचकः । खड्ग-खेटकधारी च द्विभुजः परिकीर्तितः १९ जलं तु देवता तस्य शुक्लव-र्णा शुभाकृतिः । वरुणोऽस्य जलस्यापि स्वामी पूज्यतमो मतः २० मकरे वाहने विष्टो भवेत्पद्मकरो ध्रुवम् । विश्वेदेवा देवताश्च श्वेतव-र्णाश्चतुर्भुजाः । वरदाभयहस्ताश्च साक्षसूत्रांबुभाजनाः २१ विष्णु-स्तु कृष्णवर्णः स्यात्पन्नगाशनवाहनः । शंखचक्रगदापाणिः पीत-वासाश्चतुर्भुजः २२ वसवो देवतास्तत्र श्वेतवर्णाश्चतुर्भुजाः । वरदा-भयहस्ताश्च साक्षसूत्रांबुजासनाः २३ वरुणो देवता तत्र मकरोपरि संस्थितः । यष्टिपाशधरः श्रीमान्गदापद्मधरस्तथा २४ अजैकच-रणो रुद्रो देवतास्य प्रकीर्तिता । खड्गचर्मधरो वाग्मी भुजद्वयसमा-वृतः २५ अहिर्बुध्न्याभिधो रुद्रो देवतास्य प्रकीर्तिता । श्वेतश्चतु-ष्करः पद्मवरदाभयपाशभृत् २६ पूषा तु देवता तत्र पद्मवर्णोऽबुजा-सनः । द्विभुजः पद्मपाणिः स्यात्पयोगर्भप्रियो विभुः २७ " इति नक्षत्रदेवताध्यानम् । अथोपयुक्तत्वान्नारदीयोक्ता काकमैथुनदर्श-नशांतिः । " दिवा वा यदि वा रात्रौ यः पश्येत्काकमैथुनम् । स नरो मृत्युमाप्नोति ह्यथवा स्थाननाशनम् । काकघातव्रतं यद्वा विदधीताथ वत्सरम् । पितॄन्देवान् द्विजान्भक्त्या प्रत्यहं वाऽभिवा-दयेत् । जितेंद्रियो जितक्रोधः सत्यधर्मपरायणः । तद्दोषशमना-र्थाय शांतिकर्म समारभेत् । गृहस्येशानदिग्भागे होमस्थानं प्रक-ल्पयेत् । गृह्योक्तविधिना तत्र प्रतिष्ठाप्य हुताशनम् । प्रतिमंत्रं त्र्यं-बकेन अथ मृत्युंजयेन च । व्याहृत्याभिर्व्रीहितिलैर्जयाद्यंतं प्रक-ल्पयेत् । पूर्णाहुतिं च जुहुयात्कर्ता शुचिरलंकृतः । स्वर्णशृंगां रौप्य-खुरां कृष्णां धेनुं पयस्विनीम् । वस्त्रालंकारसंयुक्तां निष्कद्वा-दशसंयुताम् । तदर्धेन तदर्द्धेन दद्याद्दक्षिणया युताम् । यथा-वित्तानुसारेण न्यूनाधिकत्वकल्पना । आचार्याय श्रोत्रियाय तां गां दद्यात्कुटुंबिने । यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनो वै कृष्णसन्निभे । सर्वमृत्युहरा नित्यमतः शांतिं प्रयच्छ मे । ब्राह्मणेभ्यो विशिष्टेभ्य

यथाशक्त्या च दक्षिणाम् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छांतिवाचनपूर्वकम् । एवं यः कुरुते सम्यक्तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते । इति काकमैथुनदर्शनशांतिः । तत्रैव कपोतादिशांतिः । आरोहयेद्गृहं यस्य कपोतो वा प्रवेशयेत् । स्थानहानिर्भवेत्तस्य यद्वानर्थपरंपरा । दोषाय धनिनां गेहे दरिद्राणां शिवाय च । तस्य शांतिश्च कर्तव्या जपहोमविधानतः । ब्राह्मणान्वरयेत्तत्र स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । षोडश द्वादशाष्टौ वा श्रौतस्मार्तक्रियापरान् । देवाः कपोत इत्यादि ऋचाभिः पंचभिर्जपम् । लक्षं कृत्वा प्रयत्नेन स्वगृह्योक्तविधानतः । ईशान्यां स्थापयेद्वह्निं मुखांतेऽष्टोत्तरं शतम् । प्रत्येकं समिदाज्यान्नैः प्रतिप्रणवपूर्वकम् । यत इंद्र भयामहे स्वस्तिदेति त्रियंबकैः । त्रिभिर्मंत्रैश्च जुहुयात्तिलान्व्याहृतिभिस्ततः । जयाहुतीस्ततो हुत्वा कुर्यात्पूर्णाहुतिं स्वयम् । विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्याद् द्यौःशांतिं च ततो जपेत् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुंजीत बंधुभिः । एवं यः कुरुते सम्यक्तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते । पिंगलायाः स्वरेऽप्येवं मधुवल्मीकयोरपि । संपूर्णमंदिरे हानिः शून्यसद्मनि मंगलम् । प्राकारे च पुरद्वारे देवागारे च वीथिषु । ग्रामस्य तत्फलं चैव गुरुकल्पनया ततः । शांतिकर्माखिलं कार्यं पूर्वोक्तेन क्रमेण तु । इति कपोतपिंगलामधुवल्मीकादिशांतिः । अथ पल्ल्याः पतने सरठस्य वारोहणे फलं शांतिश्च । " पादयोर्जघने पाण्योर्गुदे गुह्ये च जंघयोः । पल्ल्याः पाते तथारोहे सरठस्य फलं न सत् । अन्यत्र शुभदं पश्चात्सचैलं स्नानमाचरेत् । दत्त्वा शिवालये दीपं मुखमाज्ये विलोकयेत् । पल्लीसरठयो रूपं सुवर्णेन विनिर्मितम् । तदर्धार्धप्रमाणेन वित्तशाठ्यविवर्जितः । वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य श्रोत्रियाय निवेदयेत् । इति पल्लीसरठयोः शांतिः ॥ ९७ ॥

अथ नक्षत्रप्रसंगादेवाश्विन्यादीनां भानां तारका उपजातिकयाह—

त्रि ३ त्र्यं ३ ग ६ पंचा ५ ग्नि ३ कु १ वेद ४

**वह्नयः ३ शरे ५ षु ५ नेत्रा २ श्वि २ शरें ५ दु १ भू १ कृताः ४ ॥ वेदा ४ ग्नि ३ रुद्रा ११ श्वि २ यमा २ ग्नि ३ वह्नयो ३ ऽब्धयः ४ शतं १०० द्वि २ द्वि २ रदा ३२ भतारकाः ॥ ५८ ॥**

त्रित्र्यंगेति ॥ तथा च श्रीपतिः । " वह्नित्रिऋत्विषुगुणेंदुकृताग्निभूतबाणाश्विनेत्रशरभूकुयुगाब्धिरामाः । रुद्राब्धिरामगुणवेदशतद्वियुग्मदंता बुधैर्निगदिताः क्रमशो भताराः " इति । नन्वत्र संमतिवाक्ये सप्तविंशति भानि प्रतीयंते । मूलेष्वष्टाविंशतिरिति विरोधः उच्यते । उत्तरार्द्धे रुद्राब्धीत्यत्राब्धयश्चतस्त्रस्तारा: पूर्वाषाढोत्तराषाढयोर्ज्ञेयाः । द्वे पूर्वाषाढाया द्वे उत्तराषाढाया इति नारदेनापि तथैवाभिधानात् । तत्राश्विन्यास्तिस्रस्तारा: एवं भरण्यादीनां साभिजितं तारासंख्या ज्ञेया । तारामानोक्तिप्रयोजनमाह वराहः । "नक्षत्रजमुद्वाहे फलमब्दैस्तारकामितैः सदसत् । दिवसैर्ज्वरस्य नाशो व्याधेरन्यस्य वा वाच्यः " इति ॥ ५८ ॥

अथाश्विन्यादीनामाकृतिमुपजातिकरथोद्धताभ्यामाह—

**अश्व्यादिरूपं तुरगास्ययोनिक्षुरोनएणास्यमणीगृहं च ॥ पृषत्कचक्रे भवनं च मंचः शय्याकरो मौक्तिकविद्रुमं च ॥ ५९ ॥ तोरणं बलिनिभं च कुंडलं सिंहपुच्छगजदंतमंचकाः ॥ त्र्यस्त्रिचत्रिचरणाभमर्दलौ वृत्तमंचयमलाभमर्दलाः ॥ ६० ॥**

अश्व्यादिरूपमिति । तोरणं बलिनिभमिति ॥ अश्विन्यादिनक्षत्राणां रूपमाकृतिरुच्यते । तत्राश्विन्यास्तुरगास्यमश्वमुखसदृशं रूपम् । भरण्या योनिर्भगसदृशम् । कृत्तिकाया नापितक्षुरसदृशम् । रोहिण्या अनः शकटसदृशम् । मृगस्य एणास्यं हरिणमुखसदृशम् ।

आर्द्राया मणिसदृशम् । पुनर्वसोर्गृहसदृशम् । पुष्यस्य पृषत्को बाणस्तत्सदृशम् । आश्लेषायाश्चक्राकारम् । मघाया भवनं गृहसदृशम् । पूर्वाफाल्गुन्याः मंचः खट्वाकारम् । उत्तराफाल्गुन्याः शय्याकारम् । हस्तस्य हस्ताकारम् । चित्राया मौक्तिकाकारम् । स्वात्या विद्रुमं प्रवालसदृशम् । विशाखायास्तोरणाकारम् । अनुराधाया बलिनिभं भक्तपुंजाकारम् । ज्येष्ठायाः कुंडलाकृति । मूलस्य सिंहपुच्छाकारम् । पूर्वाषाढाया गजदंतसदृशम् । उत्तराषाढाया मंचकसदृशम् । अभिजितस्त्रिकोणाकारम् । श्रवणस्य त्रिचरणसदृशम् । धनिष्ठाया मर्दलसदृशम् । शतताराया वृत्तं वर्तुलम् । पूर्वाभाद्रपदाया मंचकसदृशम् । उत्तराभाद्रपद्राया यमलाभम् । रेवत्या मर्दलः मृदंगाकारं स्वरूपमित्यर्थः ॥ ५९ ॥ ६० ॥

अथ जलाशयारामदेवप्रतिष्ठामुहूर्त्तं सामान्यतो लग्नशुद्धिं देवताविशेषेण लग्नशुद्धिं नक्षत्रविशेषं चोपजातिकात्रयेणाह—

जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा सौम्यायने जीवशशांकशुक्रे ॥ दृश्ये मृदुक्षिप्रचरध्रुवे स्यात्पक्षे सिते स्वर्क्षतिथिक्षणे वा ॥ ६१ ॥ रिक्तारवर्जे दिवसेऽतिशस्ता शशांकपापैस्त्रिभवांगसंस्थैः ॥ व्यंत्याष्टगैः सत्खचरैर्मृगेंद्रे सूर्यो घटे को युवतौ च विष्णुः ॥ ६२ ॥ शिवो नृयुग्मे द्वितनौ च देव्यः क्षुद्राश्चरे सर्व इमे स्थिरर्क्षे ॥ पुष्ये ग्रहा विघ्नपयक्षसर्पभूतादयोऽन्त्ये श्रवणे जिनश्च ॥ ६३ ॥

इति मुहूर्तचिंतामणौ द्वितीयं नक्षत्रप्रकरणं समाप्तम् ॥२॥

जलाशयेति । रिक्तारेति । शिवो नृयुग्मे इति च ॥ जलाशयाः वापीकूपतडागादयः तेषां प्रतिष्ठा उत्सर्गः । आराम उपवनं तस्या-

ग्युत्सर्गः। सुरा देवा विष्ण्वादयः तेषां प्रतिष्ठापनम्। सौम्यायने उत्तरायणे तथा जीवशशांकशुक्रे दृश्ये उदिते सति। तथा मृदुध्रुवाक्षिप्रचरनक्षत्रे। तथा सति शुक्ले पक्षे। तथा स्वर्क्षतिथिक्षणे वा। यस्य देवस्य प्रतिष्ठा कर्तुमिष्टा तस्य तत्स्वामिके नक्षत्रे तिथौ वा क्षणे मुहूर्ते वा। तथा रिक्तारवर्जे दिवसे रिक्तातिथिभौमवारव्यतिरिक्ततिथिवारेषु एवंविधे दिने प्रतिष्ठाजलाशयारामदेवानां क्रमेण कर्मार्हत्वोपभोग्यत्वपूजायोग्यत्वरूपा अतिशस्ता स्यात्। तथा च गार्ग्यः। देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठामुत्तरायणे। माघादिपंचमासेषु कृष्णेऽप्यापंचमीदिनम्। दक्षिणे त्वयने कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात्। यदा तु दाक्षिणायन एव जलस्थितिसंभवस्तदा न कालनियमः। "न कालनियमस्तत्र सलिलं तत्र कारणम्" इति भविष्यपुराणोक्तेः। अथ क्रूरप्रकृतीनां दाक्षिणायनेऽपि स्थापनं कार्यमित्युक्तं वैखानससंहितायाम्। "मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः। महिषासुरहंत्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने।" नारदः। "विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पंचसु। यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः।" अथ लग्नशुद्धिः। शशांकपापैः चंद्रसूर्यभौमशनिराहुकेतुभिः त्रिभवांगसंस्थैः तृतीयषष्ठैकादशस्थानस्थितैरुपलक्षिते लग्ने तथा सत्खचरैः शुक्रबुधगुरुभिः व्यंत्याष्टगैर्द्वादशाष्टमव्यतिरिक्ताखिलस्थानस्थैः सद्भिः देवादिप्रतिष्ठा अतिशस्ता। अथ सूर्यो मृगेंद्रे सिंहलग्ने स्थाप्यः। तथा को ब्रह्मा घटे कुंभे। विष्णुर्युवतौ कन्यायाम्। शिवो महादेवो नृयुग्मे मिथुने। च पुनर्देव्यो दुर्गादयो द्वितनौ द्विस्वभावराशौ मिथुनकन्याधनुर्मीनलग्नेषु। क्षुद्रा देव्यश्चतुःषष्टियोगिनीप्रभृतयश्चरलग्ने मेषकर्कतुलामकरेषु। सर्वे इमे उक्ता अनुक्ताश्च स्थिरर्क्षे वृषसिंहवृश्चिककुंभेषु। अथ पुष्ये ग्रहा इति। ग्रहाश्चंद्रादयोऽष्टौ पुष्यनक्षत्रे स्थाप्याः। उपलक्षणमेतत्। सूर्यस्य हस्तनक्षत्रे स्थापनम्। इंद्रब्रह्मणोः पुष्यश्रवणाभिजित्सु कुबेरस्कंदयोरनुराधायाम्। दुर्गादीनां मूले। सप्तर्षीणां स्वाधिष्ठितनक्षत्रे। लक्ष्मीव्यासवाल्मीक्यग-

स्त्यानामपि सप्तर्ष्यधिष्ठितनक्षत्रे स्थापनम् । तदुक्तं रत्नमालायाम् । पुष्यश्रुत्यभिजित्सु चेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कंदयोर्मैत्रे तिग्मरुचेः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां शुभम् । सप्तर्षयो यत्र वसंति धिष्ण्ये कार्या प्रतिष्ठा खलु तत्र तेषाम् । श्रीव्यासवाल्मीकिघटोद्भवानां तथा स्मृता वाक्पतिभे ग्रहाणाम् " इति । अथ विघ्नपो गणेशः यक्षो देवयोनिः सर्पा वासुक्यादयः भूतो देवयोनिः । " विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगंधर्वकिन्नराः । पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः" इत्यमरः । आदिशब्देन राक्षसासुरप्रमथसरस्वतीप्रभृतयोंऽत्ये रेवत्यां स्थाप्याः । तथा श्रवणे जिनो बुद्धश्च स्थाप्यः । उपलक्षणं चैतत् । इंद्रकुबेरवर्जितानां लोकपालानां धनिष्ठायां स्थापनम् । इतोऽवशिष्टानां देवानां त्र्युत्तरारोहिणीषु स्थापनं स्यादित्यर्थः । तथा च श्रीपतिः । "गणपरिवृढरक्षोयक्षभूतासुराणां प्रमथफणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे । श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां निगदितमखिलानां स्थापनं हि स्थिरेषु ।" ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

इति श्रीदैवज्ञानंतसुतदैवज्ञरामविरचितायां स्वकृतमुहूर्तचिंतामणिटीकायां प्रमिताक्षरायां नक्षत्रप्रकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

---

# अथ संक्रांतिप्रकरणम् ॥ ३ ॥

अथ संक्रांतिप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र प्राग्राशितो परराशौ संक्रमणं नाम गमनं संक्रांतिस्तस्याः नक्षत्रविशेषवशेन वारवशेन च संज्ञां फलं च सार्द्धवसंततिलकयाह—

**घोरार्कसंक्रमणमुग्ररवौ हि शूद्रान्ध्वांक्षी विशो**
**लघुविधौ च चरर्क्षभौमे ॥ चौरान्महोदरयुता**
**नृपतीञ्ज्ञमैत्रे मंदाकिनी स्थिरगुरौ सुखयेच्च**
**मंदा ॥ विप्रांश्च मिश्रभभृगौ तु पशूंश्च मिश्रा**
**तीक्ष्णार्कजेंऽत्यजसुखा खलु राक्षसी च ॥ १ ॥**

घोरार्केति । विप्रांश्चेति ॥ अर्कसंक्रमणमर्कसंक्रांतिः । उग्ररवौ उग्रनक्षत्रेषु रविवारे चेत्स्यात्तदा घोरेति संज्ञा सा शूद्रान्सुखमुत्पादयेत् । उग्ररवाविति उग्रैः सहितो रविः उग्ररविस्तस्मिन्नुग्ररवाविति मध्यमपदलोपी तत्पुरुषः । ततः सप्तम्येकवचनम् । अथवा समाहारद्वंद्वे अनित्यमागमशासनमिति नुमभावः । एवं लघुविधाविस्यादिष्वपि समाधेयम् । अथ लघुनक्षत्रेषु विधौ सोमवारे सूर्यसंक्रांतिर्ध्वांक्षीनाम्नी विशो वैश्यान् सुखयेत् चरर्क्षभौमे चरनक्षत्रे भौमवारे वा सूर्यसंक्रमणं चेन्महोदरयुता महोदरीसंज्ञिका चौरान्सुखयेत् । ज्ञमैत्रे बुधवारे मैत्रसंज्ञनक्षत्रेषु वाऽर्कसंक्रांतिर्मंदाकिनीनाम्नी नृपतीन्राज्ञः सुखयेत् । स्थिरगुरौ स्थिरनक्षत्रेषु गुरुवारे चार्कसंक्रांतिर्मंदानाम्नी विप्रान्ब्राह्मणान्सुखयेत् । मिश्रभभृगौ मिश्रनक्षत्रयोर्भृगुवारे वाऽर्कसंक्रांतिर्मिश्रानाम्नी पशून्सुखयेत् । तीक्ष्णार्कजे तीक्ष्णसंज्ञकनक्षत्रेषु अर्कजे शनिवारे वार्कसंक्राती राक्षसीनाम्नी अंत्यजान् चांडालान्सुखयतीत्यंत्यजसुखा स्यात् ॥ १ ॥

अथ दिनरात्रिविभागेन संक्रांत्यशुभफलमुत्तरायणदक्षिणायनसंज्ञां च सार्द्धवसंततिलकयाह—

**त्र्यंशे दिनस्य नृपतीन्प्रथमे निहंति मध्ये द्विजा-**
**नपि विशो परके च शूद्रान् ॥ २ ॥ अस्ते निशा-**
**प्रहरकेषु पिशाचकादीन्नक्तंचरानपि नटान्पशुपा-**
**लकांश्च ॥ सूर्योदये सकललिंगिजनं च सौम्यया-**
**म्यायनं मकरकर्कटयोर्निरुक्तम् ॥ ३ ॥**

त्र्यंशे इति । अस्त इति ॥ अत्रार्कसंक्रमणमित्यनुवर्तते । दिनमाने त्रिभिर्भक्ते त्र्यंशो भवति तत्र दिनस्य प्रथमे त्र्यंशेऽर्कसंक्रमणं नृपतीन्हंति । मध्ये द्वितीयत्र्यंशो द्विजान्ब्राह्मणान्हंति । अपरे तृतीयत्र्यंशे वैश्यान्हंतीत्येवं सर्वत्र व्याख्येयम् । अस्ते सूर्यास्तमयेऽर्कसंक्रमणं शूद्रान् हंति । अथ रात्रिसंक्रांतिफलम् ।

रात्रिप्रथमप्रहरे पिशाचकान्। आदिशब्देन भूतान्।द्वितीयप्रहरे नक्तंचरान् राक्षसान्। तृतीयप्रहरे नटान् नर्तकान्। चतुर्थप्रहरे पशुपालकान् आभीरान्। सूर्योदयसमकालेऽर्कसंक्रमणं सकललिंगिजनं पाखंडचादिकं हंतीत्यर्थः। "पाखंडाः सर्वलिंगिनः" इत्यभिधानात्। क्रूरसौम्यवारपरत्वेन फलमाह वसिष्ठः। "रविरविजभौमवारे संक्रांतौ दिनकरस्य तन्मासे। पित्तकफानिलजामयनरपतिकलहस्त्ववृष्टिश्च॥ बुधगुरुसितचंद्राहे सति संक्रांतावनामयं नृणाम्। क्षितिपतिनिकरक्षेमं सस्यविवृद्धिर्विधर्मिणां पीडा॥" जन्मनक्षत्रे संक्रांतिफलं दीपिकायाम्। "यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत्। तन्मासाभ्यंतरे तस्य रोगक्लेशधनक्षयाः॥" तत्र शांतिकमपि तत्रैव। "तगरसरोरुहपत्रै रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः। स्नानं जन्मन्यृक्षे रविसंक्रांतौ नृणां शुभदम्॥" अन्यत्र वसिष्ठः। "अजकन्याझषकार्किणि संक्रांतौ यदि भवेद्वर्षम्। अतुलं क्षेम सुभिक्षं नृपसज्जनगोकुलक्षेमम्॥ घटचापसिंहमिथुने संक्रांतौ यदि भवेद्वर्षम्। आमयडामरभूभृद्युद्धमनर्घं त्ववृष्टिश्च॥ वृषवृश्चिकतुलमकरे वृष्टिः स्यात्सांक्रमे समये। विस्फोटामयतस्करपीडावृष्टिः कृशानुभयम्॥" अथ सौम्ययाम्यायनमिति। मकरकर्कटयोः संक्रांतिश्चेत्तदा क्रमेण सौम्ययाम्यायनं निरुक्तम्। मकरे उत्तरायणं कर्के याम्यायनं स्यात्॥२॥३॥

अथावशिष्टसंक्रांतिषु षडशीत्यादिसंज्ञा अनुष्टुभाह--

**षडशीत्याननं चापनृयुक्कन्याझषे भवेत्॥**
**तुलाजे विषुवं विष्णुपदं सिंहालिगोघटे॥ ४॥**

षडशीत्याननमिति॥ धनुर्मिथुनकन्यामीनेषु अर्कसंक्रमणं षडशीत्याननं षडशीतिमुखसंज्ञं स्यात्। तुलामेषयोः संक्रांति विषुवसंज्ञा। वृषसिंहवृश्चिककुंभेष्वर्कसंक्रांतिर्विष्णुपदसंज्ञिका॥ ४॥

संक्रातौ गौणमुख्यकालमुपजात्याह--

**संक्रांतिकालादुभयत्र नाडिकाः पुण्या मताः**

**षोडश षोडशोष्णगोः ॥ निशीथतोऽर्वागपरत्र संक्रमे पूर्वापराह्नांतिमपुण्यभागयोः ॥ ५ ॥**

संक्रांतिकालादिति ॥ गणितमार्गेणय उष्णगोः सूर्यस्य संक्रांतिकाल आगतः तत उभयत्र पूर्वतः परतश्च षोडश षोडश नाडिकघटिकाः पुण्यसंपादकत्वात्पुण्या मताः । ब्रह्मसिद्धांते । “ संक्रांतेः प्राक्परस्ताच्च सार्द्धाः षोडश नाडिकाः। त्रयस्त्रिंशत्संक्रमस्य पुण्याः सर्वस्य नाडिकाः॥ ” अनेन “ संक्रांतेः पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कलाः। ” इति स्मृतिवाक्यं पूर्वतः परतश्च अष्टौ अष्टौ घटिका इत्येवं षोडशेति व्याख्यातं तदपाकृतं भवति । सूर्यसिद्धांतेऽपि । “ अर्कमानकलाः षष्ट्या गुणिता भुक्तिभाजिताः । तदर्धनाड्यः संक्रांतेरर्वाक्पुण्यं तथा परे॥” इति । अथ निशीथत इति । निशीथतोऽर्धरात्रादर्वाक् पूर्वं परत्र पश्चाच्च संक्रांतिकाले सति पूर्वापराह्नांतिमपूर्वभागयोः पूर्वापरयोरह्नोः क्रमेणांतिमपूर्वभागयोरुभयत्र षोडश षोडश घटिकाः पुण्या इति पूर्वेण संबंधः । अयमर्थः । यद्यर्धरात्रात्प्राक्संक्रांतिस्तदा पूर्वदिनस्य उत्तरार्द्धं पुण्यम् । यद्यर्द्धरात्रादुपरि संक्रांतिस्तदोत्तरदिनस्य पूर्वार्द्धमेव पुण्यमित्यर्थः ॥ ५ ॥

अथार्द्धरात्रसंक्रमणे मकरकर्कटयोश्च विशेषमुपजातिकयाह––

**पूर्णे निशीथे यदि संक्रमः स्याद्दिनद्वयं पुण्यमथोदयास्तात्॥ पूर्वं परस्ताद्यदि याम्यसौम्यायने दिने पूर्वपरे तु पुण्ये ॥ ६ ॥**

पूर्णे इति ॥ पूर्णे निशीथे अर्द्धरात्रे यदि संक्रमः स्यात्तदा दिनद्वयं पूर्वदिनं परदिनं च पुण्यमुक्तम् । उक्तं च । “ यद्यर्धरात्र एव स्यात्संपूर्णे संक्रमो रवेः। तदा दिनद्वयं पुण्यं स्नानदानादिकर्मसु ॥ ”. अथेति । अथानंतरमुदयास्तात्सूर्योदयात्सूर्यास्ताच्च पूर्वं परस्ताच्च यदि याम्यसौम्यायने कर्कमकरसंक्रांती भवतः तदा पूर्वपरे दिने पुण्ये स्याताम् । अयमर्थः । सूर्योदयात्पूर्वं कर्कसंक्रमणं स्यात्तदा

पूर्वदिन एव पुण्यकालो नोत्तरदिने । तथा यदि सूर्यास्तानंतरं मकरसंक्रांतिः स्यात्तदोत्तरादिन एव पुण्यकालो न पूर्वदिने । गार्ग्यः । " यदास्तमनवेलायां मकरं याति भास्करः । प्रदोषे चार्द्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि ॥ अर्धरात्रे तदूर्ध्वं वा संक्रांतौ दक्षिणायने । पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥ " इति । वा इवार्थे । प्रदोषलक्षणं स्कांदे । " त्रिमुहूर्तः प्रदोषः स्याद्रवावस्तंगते सति । " इति ॥ ६ ॥

अथोदयास्तादिति वचनस्यापवादमिंद्रवज्रयाह—

**संध्या त्रिनाडीप्रमितार्कबिंबादर्धोदितास्तादध ऊर्ध्वमत्र ॥ चेद्याम्यसौम्ये अयने क्रमात्स्तः पुण्यौ तदानीं परपूर्वघस्रौ ॥ ७ ॥**

संध्या त्रीति॥ अर्कमंडलादर्धोदितादर्धास्ताच्चाध ऊर्ध्वं क्रमात्त्रिभिर्नाडीभिर्मिता संध्या संध्याकालः स्यात्। अर्धोदितार्कबिंबात्पूर्वं त्रिनाडीमिता प्रातःसंध्या । तथार्धास्तादर्कबिंबादुपरि त्रिनाडीमिता सायंसंध्येत्यर्थः । तत्प्रयोजनमाह । अत्रेति । अत्र प्रातःसंध्यायां सायंसंध्यायां च क्रमाच्चेद्याम्यसौम्ये अयने दक्षिणोत्तरायणे स्तस्तदानीं परपूर्वौ घस्रौ दिवसौ पुण्यौ । यदि प्रातःसंध्यायां दक्षिणायनप्रवृत्तिस्तदा सूर्योदयानंतरं संपूर्णमहः पुण्यम् । तथा यदि सायंसंध्यायामुत्तरायणप्रवृत्तिस्तदा सूर्यास्तात्पूर्वं संपूर्णमहः पुण्यं स्यादित्यर्थः । तदाह नारदः । " सूर्यस्योदयसंध्यायां यदि याम्यायनं भवेत् । तदोदयादहः पुण्यं पूर्वाह्नः पूर्वतो यदि ॥ सूर्यास्तमनसंध्यायां यदि सौम्यायनं भवेत् । तदहः पुण्यकालः स्यात्परतश्चोत्तरेऽहनि ॥ " इति । उदयसंध्यास्तसंध्योर्लक्षणं तत्रैव । " अर्धार्कास्तमनात्संध्या घटिकात्रयसंमिता । तथैवार्धोदयात्प्रातर्घटिकात्रयसंमिता ॥ " इति । एवं सत्यर्कबिंबस्यार्धास्तादर्धोद-

यद्वा क्रमात्पश्चात्प्राक् त्रिघटीमितास्तसंध्योदयसंध्या चोच्यते। तत्रास्तसंध्यायां यदि मकरसंक्रमः स्यात्तदा तद्दिन एव पुण्यकालो नोत्तरदिने। यद्यस्तसंध्यामतिक्रम्य मकरसंक्रांतिस्तदोत्तरदिन एव पुण्यकालो न पूर्वदिने। एवं यद्युदयसंध्यायां कर्कसंक्रांतिस्तदा सूर्योदयानंतरमेव पुण्यकालो न प्राग्दिने। यद्युदयसंध्यातः प्राक्कर्कसंक्रमस्तदा प्राग्दिन एव पुण्यकालो नोत्तरदिने। इति निष्कृष्टोऽर्थः। अथ "रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः।" इति रात्रौ स्नानदानादिनिषेधेऽपि "नैमित्तिकं तु कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु।" इति सुमंतुवाक्यशेषात्। "सुतजनने संक्रांतावुपरागे सूर्यचंद्रयोर्नित्यम्। रात्रावपि कर्तव्यं स्नानं दानं विशेषतो नृणाम्॥" इति वासिष्ठवचनात्। "राहुदर्शनसंक्रांतिविवाहात्ययवृद्धिषु। स्नानदानादिकं कार्यं निशि काम्यव्रतेषु च॥" इति। रात्रौ संक्रमणे रात्रौ स्नानं प्राप्तं तत्र कर्कमकरसंक्रांतौ स्नानदानादौ देशप्रसिद्धशिष्टाचारेण व्यवस्थावगंतव्या। तत्र गौर्जरास्तु ग्रहणवदयन इति स्वीयसूत्रं "स्नानं दानं ग्रहणवत्सौम्ययाम्यायनद्वये।" इति कश्यपसंहितोक्तं चानुसृत्य रात्रावयनसंभवे सति रात्रावेव स्नानादिकं कुर्वंति। दाक्षिणात्यास्तु "कार्मुकं तु परित्यज्य झषं याति दिवाकरः।" इत्यादिभविष्योत्तरादिवाक्यमंगीकृत्य दिवस एव स्नानादिकं कुर्वंति तत्रापि नारदोक्तः संध्याकालसंक्रमे विशेषो ध्येय इत्यलम्॥ ७॥

अथ पूर्वपराः षोडश घटिकाः पुण्या इति पूर्वं सामान्येनोक्तमिदानीं विष्णुपदादिविशेषमनुष्टुभाह—

**याम्यायने विष्णुपदे चाद्यमध्यास्तुलाजयोः॥**
**षडशीत्यानने सौम्ये परा नाड्योऽतिपुण्यदाः॥ ८॥**

याम्यायन इति॥ कर्कसंक्रांतौ विष्णुपदे वृषसिंहवृश्चिककुंभसंक्रांतिषु संक्रांतिकालाद्याः प्रथमाः षोडश घटिका अतिपुण्यदाः स्नानदानादावनंतपुण्यदा ज्ञेयाः। अग्रिमास्तु न तथा। तुलाजयो-

स्तुलामेषयोर्मध्या उभयतः षोडश घटिकाः संक्रांतिकालात्प्रागष्टौ परतश्चाष्टाविति दीपिकाकारेण व्याख्यातम् । यदुक्तं गुरुणा । "वर्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश।" इति तन्मध्यमतृतीयांशाभिप्रायेणेति ज्ञेयम् । तथा षडशीत्यानने मिथुनकन्याधनुर्मीनसंक्रांतिषु सौम्येऽयने मकरसंक्रांतौ च संक्रांतिकालात्परा अग्रिमाः षोडश घटिका अतिपुण्याः प्रथमास्तु न तथा । एवं निर्णीते पुण्यकाले स्नानाद्यवश्यं विधेयम् । तत्र स्नानाद्यकुर्वतः प्रत्यवायमाह वसिष्ठः । " विषुवत्ययने ग्रहणे संक्रांतौ पुण्यदिवसे वा । पितृतृप्तिं न करोति हि दत्त्वा शापं व्रजति तस्य पिता ॥ आगतगतसमयेऽपि च करोति यद्दानजपहोमाद्यम् । ऊषरवापितबीजं यद्वत्तद्वच्च निष्फलं भवति ॥ " इति संक्रांतिषु स्नानदानादेरनंतं फलं स्यात् । "षडशीत्यां तु यद्दानं यद्दानं विषुवद्द्वये । दृश्यते सागरस्यांतस्तस्यांतो नैव दृश्यते ॥ " इति भरद्वाजोक्तेः । " अयने कोटिपुण्यं च सहस्रं विषुवे फलम् । षडशीत्यां सहस्रं तु फलं विष्णुपदेषु च ॥ " इति वसिष्ठोक्तेश्च । अयं च निर्णयश्चंद्रादीनामपि संक्रमे ज्ञेयः । तत्र हेमाद्र्यादौ कालनिर्णयकारादिभिर्या पुण्यकालघटिका उपनिबद्धास्ताः स्थूलास्तेन षष्टिघ्नबिंबं ग्रहभुक्तिभक्तमित्यादिप्रकारेण ग्रहमध्यमभुक्तिमध्यमबिंबानीताः सूक्ष्मा घटिका लिख्यंते । स्फुटगतिस्फुटबिंबैश्चेत्साध्यंते ता अतिसूक्ष्मास्तासामनियतत्वात् श्लोके अनुपनिबंधः । मध्यमास्तु यथा । " नाड्यो रामगुणा ३३ रवेरथ विधोः षड्दोः पलैर्युग्द्वयं २ । २६ भौमस्याब्धिपलैर्युता नव ९ । ४ विदो युक्ताः पलैः खाश्विभिः । षण्नाड्यो ६ । २० ष्टगजा ८ । ८ गुरोरथ भृगोर्नंदाः पलैरष्टभिः ९ । ८ पुण्याः स्युः खनृपाः १६० शनेरुभयतो राश्यृक्षयोः संक्रमे ॥ " इति ॥ ८ ॥

निरयनांशसंक्रांतिमभिधायेदानीं सायनांशसंक्रांतिं सपुण्यकालामुपजात्याह—

**तथायनांशाः खरसाहताश्च स्पष्टार्कगत्या विहृता**

दिनाद्यैः ॥ मेषादितः प्राक् चलसंक्रमाः स्युर्दाने जपादौ बहुपुण्यदास्ते ॥ ९ ॥

तथेति ॥ यथा राशिसंक्रमा बहुपुण्यदास्तथा चलसंक्रमा अपीति व्यवहितस्तथाशब्दः । अयनांशाः षष्ट्या गुण्याः स्पष्टसूर्यगत्या विहृता लब्धैर्दिनाद्यैः दिनघटीपलैः कृत्वा मेषादिद्वादशसंक्रांतिकालात्प्राक् चलसंक्रमाः स्युस्ते चलसंक्रमा दाने जपादौ जपश्राद्धहोमादौ बहुपुण्यदा भवंति । पुलस्त्यः [1] । " अयनांशसंस्कृतो भानुर्गोले चरति सर्वदा । अमुख्यराशिसंक्रांतिस्तुल्यः कालविधिस्तयोः ॥ स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मभिः । सुकृतं चलसंक्रांतावक्षयं पुरुषोऽश्नुते ॥ " इति । जाबालिरपि । " संक्रांतिषु यथा कालस्तदीयेऽप्ययने तथा । अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः परा ॥ " इति । अत्र चलसंक्रमाख्ये मकरायणे पूर्वा विंशतिर्घटिकाः पुण्याः मकरसंक्रांतौ तु परा विंशतिर्घटिकाः पुण्यकालः । मकरव्यतिरिक्तैकादशचलसंक्रांतिषु तत्तत्संक्रमवत्पुण्यकालो ज्ञेयः । अयनांशानयनादिविचारः सिद्धांतादवगंतव्यः । ईश्वरेच्छालोकादृष्टवशात्तत्तद्राश्यादिविभागस्य सूर्यतेजःसंपर्कश्चलसंक्रमः मंडलमध्यसंपर्कश्च राशिसंक्रम इति विषयविवेकः । तत्र निरयनगणनयैव सकलव्यवहारः साध्यः । सायनगणना तु नियतविषयैव । " अयनांशाः प्रदातव्या लग्ने क्रांतौ चरागमे । वित्रिभे सत्रिभे पाते तथा दृक्कर्मपातयोः ॥ " इति । एवं द्वयोरपि मानयोरसंकीर्णो व्यवहार इति सर्वमनाकुलम् । पुण्यकालस्तु उभयविधसंक्रमेऽपि ज्ञेयः । पूर्वलिखितवाक्यस्वरसात् ॥ ९ ॥

अथ संक्रांत्युपयोगित्वाज्जघन्यबृहत्समनक्षत्राण्युपजात्याह—

समं मृदुक्षिप्रवसुश्रवोऽग्निमघात्रिपूर्वास्त्रपभं बृह-

---

[1] चलसंक्रमे ।

त्स्यात् ॥ ध्रुवद्विदैवादितिभं जघन्यं सार्पाबुपाद्रानिलशाक्रयाम्यम् ॥ १० ॥

समामेति ॥ मृदुक्षिप्रवसुश्रवोऽग्निमचात्रिपूर्वास्त्रपभं समम् । अस्त्रपभं मूलम् । एतानि पंचदश भानि समसंज्ञानि ज्ञेयानि । ध्रुवद्विदैवादितिभं बृहत्स्यात् ध्रुवादिषड् भानि बृहत्संज्ञकानि । सार्पाबुपाद्रानिलशाक्रयाम्यं जघन्यं स्यात् आश्लेषादिषड् भानि जघन्यसंज्ञानि १०

अथ संज्ञाप्रयोजनमुपेंद्रवज्रयाह—

जघन्यभे संक्रमणे मुहूर्ताः शरेंदवो बाणकृता बृहत्सु ॥ खरामसंख्याः समभे महर्घसमर्घसाम्यं विधुदर्शनेऽपि ॥ ११ ॥

जघन्यभ इति ॥ जघन्यनक्षत्रेऽर्कसंक्रमणे पंचदश मुहूर्त्ता ज्ञेयाः। बृहन्नक्षत्रेऽर्कसंक्रमणे बाणकृताः पंचचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता ज्ञेयाः । समनक्षत्रेऽर्कसंक्रमणे खरामसंख्यास्त्रिंशन्मुहूर्त्ता ज्ञेयाः । उक्तं च नारदेन । "तासां प्रमाणं घटिकास्त्रिंशन्नवतिषष्ट्यः।" इति। फलमाह। महर्घसमर्घसाम्यमिति । पंचदशमुहूर्तायां संक्रांतौ सर्वमन्नं महर्घं दुष्प्रापं भवति । पंचचत्वारिंशन्मुहूर्तायां संक्रांतौ समर्घम् । त्रिंशन्मुहूर्तायां संक्रांतौ समं यथास्थितं भवति । विधुदर्शनेऽपीति । चन्द्रदर्शनेऽप्येवमेव फलं वाच्यम् । अयमर्थः । जघन्यभे चन्द्रदर्शने महर्घम् । बृहन्नक्षत्रे चन्द्रदर्शने समर्घम् । समभे चन्द्रदर्शने साम्यम् ॥ ११ ॥

अथ प्रसंगात्कर्कसंक्रांतावब्दविशोपकाननुष्टुभाह—

अर्कादिवारे संक्रांतौ कर्कस्याब्दविशोपकाः ॥
दिशो नखा गजाः सूर्या धृत्योऽष्टादश सायकाः॥ १२॥

अर्कादीति ॥ कर्कसंक्रांतौ अर्कादिवारे सति एतेऽब्दविशोपका ज्ञेयाः । यथा रविवारे कर्कसंक्रांतौ दश विशोपकाः । एवं सोमे विंशतिः । भौमेऽष्टौ । ज्ञे द्वादश । गुरौ धृत्योऽष्टादश । शुक्रेऽष्टादश । शनौ पंचेत्यर्थः ॥ १२ ॥

अथ कीदृशस्य रवेः संक्रमो जातस्तत्फलमिंद्रवज्रयाह—

स्यात्तैतिले नागचतुष्पदे रविः सुप्तो निविष्टस्तु गरादिपंचके ॥ किंस्तुघ्न ऊर्ध्वः शकुनौ सकौलवेऽनिष्टः समः श्रेष्ठ इहार्घवर्षणे ॥ १३ ॥

स्यात्तैतिल इति ॥ रविस्तैतिले करणे नागकरणे चतुष्पदे च करणे सुप्तः संक्रमितः स्यात् । गरादिपंचके गरे वणिजे भद्रायां बवे बालवे च निविष्टः संक्रमितः स्यात् । किंस्तुघ्ने सकौलवे शकुनौ च ऊर्ध्वे ऊर्ध्वस्थितः संक्रमितः स्यात् । इह करणाधिकरणसंक्रांतौ रविः अर्घवर्षणे अर्घे मूले वर्षणे वृष्टौ । उपलक्षणत्वादन्नेऽपि क्रमादनिष्टः समः श्रेष्ठः स्यात् । अयमर्थः । सुप्तरविसंक्रमा अर्घवर्षणधान्येष्वनिष्टाः महर्घवृष्ट्यभावधान्याभावकारकाः एवं निविष्टः समः । तथोर्ध्वः श्रेष्ठः । उक्तं च श्रीपतिना । " धान्यार्घवृष्टिषु भवेत्क्रमशस्त्वनिष्टमध्येष्टता " इति ॥ १३ ॥

अथ रविसंक्रांतेः करणपरत्वेन वाहनवस्त्रायुधभक्ष्यलेपनजातिपुष्पाणि सफलानि शार्दूलविक्रीडितत्रयेणोपजातिकया चाह—

सिंहव्याघ्रवराहरासभगजा वाहद्विषद्घोटकाः श्वाजौ गौश्चरणायुधश्च बवतो वाहा रवेः संक्रमे ॥ वस्त्रं श्वेतसुपीतहारितकपांडुरक्तकालासितं चित्रं कंबलदिग्घनाभमथ शस्त्रं स्याद्भुशुंडी गदा ॥ १४ ॥ खड्गो दंडशरासतोमरमथो कुंतश्च पाशोऽकुशोऽस्त्रं बाणस्त्वथ भक्ष्यमन्नपरमान्नं भैक्षपक्वान्नकम् ॥ दुग्धं दध्यपि चित्रितान्नगुडमध्वाज्यं तथा शर्कराऽथो लेपो मृगनाभिकुंकुममथो पाटीरमृद्रोचनम् ॥ १५ ॥ यावश्चोतुमदो निशांजनमथो कालागु-

रुश्चंद्रको जातिर्दैवतभूतसर्पविहगाः पश्वेणविप्रस्ततः ॥ क्षत्रावैश्यकशूद्रसंकरभवाः पुष्पं च पुन्नागकं जातीबाकुलकेतकानि च तथा बिल्वार्कदूर्वांबुजम् ॥१६॥ स्यान्मल्लिका पाटलिका जपा च संक्रांतिवस्त्राशनवाहनादेः ॥ नाशश्च तद्वृत्त्युपजीविनां च स्थितोपविष्टस्वपतां च नाशः ॥ १७ ॥

सिंहेति । खङ्ग इति । यावश्चेति । स्यान्मल्लिकेति ॥ ववतो ववमारभ्यैकादशकरणेषु क्रमेण वाहनादीनि स्युः । वाहनानि सिंहादीनि । रासभो गर्दभः । वाहद्विषन्महिषः । " लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः ।" इत्यमरः । अजो मेषः । चरणायुधः कुक्कुटः । नारदेन तु विशेष उक्तः । " खशबाह्लीकवंगेषु संक्रांतेर्धिष्ण्यवाहनम् । अन्यदेशेषु तिथ्यर्धवाहनाः स्युर्ववादयः ॥" इति । अश्विन्यां यदा संक्रांतिस्तदाश्विन्याः योऽश्वस्तद्वाहनं स्यात् खशादिदेशेषु । एवं सर्वनक्षत्रेषु । अथ वस्त्रं श्वेतादि । हारीतकं नीलवर्णम् । पांडु आरक्तमरुणवर्णम् । कालं श्यामलम् । असितं श्वेतवर्णरहितम् । कज्जलवर्णमित्यर्थः । दिग्वस्त्राभावः । घनाभं मेघवर्णम् । अथ शस्त्रम् । भुशुंड्यादीनि आयुधानि प्रसिद्धानि । अथ भक्ष्यम् । अन्नं भक्तः । परमान्नं पायसम् । भैक्ष्यं भिक्षासमूहः । पक्वान्नमपूपादि । चित्रितान्नं हरिद्रादिरंजितम् । अथ लेपो विलेपनम् । मृगनाभिः कस्तूरी । कुंकुमं केशरम् । पाटीरं चंदनम् । मृत्प्रसिद्धा । रोचनं गोरोचनमिति । यावोऽलक्तकः । ओतुर्मदो मार्जारघर्मः । भाषया जवादिरिति । निशा हरिद्रा । अंजनं कज्जलम् । कालागुरुरगुरुविशेषः । चंद्रकः कर्पूरः । अथ जातिः । संकरभवा अनुलोमजाः प्रतिलोमजाश्च । अथ पुष्पम् । पुन्नागकं नागकेसरपुष्पम् । मल्लिका वेलिः । जपा ओंड्रपुष्पम् । शेषाणि प्रसिद्धानि सर्वत्र । क्वचिद्वयोऽप्युक्तम् । " शिशुः कुमारश्च गतालका युवा प्रौढो प्रग-

लभा च ततश्च वृद्धा। वंध्यातिवंध्या च सुतार्थिनी च प्रव्राजिका चेति ववादिकानाम्॥" इति। तथा क्वचिद्भोजनपात्रमप्युक्तम्। "सुवर्णरौप्यताम्राणि लोहं सीसं त्रपुस्तथा। कांस्यपाषाणकाष्ठं च मृत्पात्रं वेणुपात्रकम्॥" इति। एवं संक्रमकाले यानि वस्त्राशन-वाहनादीन्यभिहितानि। आदिशब्देनायुधलेपनजातिपुष्पाणि तेषां नाशो भवेत्। च पुनस्तद्वृत्त्युपजीविनां वस्त्रादिवृत्त्युपजीविनां नाशो भवेत्। स्थितोपविष्टस्वपतां च स्यात्तैतिले इत्यादिना सुप्तत्वादीन्युक्तानि। तद्गुणविशिष्टानां नाशः स्यादित्यर्थः॥ १४॥ ॥ १५॥ १६॥ १७॥

अथ संक्रांतिवशेन प्रतिमनुष्यं शुभाशुभमुपजात्याऽऽह——

**संक्रांतिधिष्ण्याधरधिष्ण्यतस्त्रिभे स्वभे निरुक्तं गमनं ततोऽङ्गभे॥ सुखं त्रिभे पीडनमंगभेंऽशुकं त्रिभेऽर्थहानी रसभे धनागमः॥ १८॥**

संक्रांतीति॥ संक्रांतिर्यस्मिन्नक्षत्रे स्यात्ततोऽधरधिष्ण्यं पूर्वनक्षत्रं तस्मात्स्वजन्मनक्षत्रं गण्यम्। तच्चेत्प्रथमत्रिभे भवति तदा गमनं यात्रा स्यात्। ततः प्रथमत्रिकानंतरमंगभे षण्नक्षत्रेषु यदि स्वभं तदा सुखं स्यात्। ततस्त्रिभे स्वभे पीडनं शरीरपीडा। पुनरंगभे स्वभेंऽशुकं वस्त्रादिप्राप्तिः। ततस्त्रिभे स्वभेऽर्थहानिः। ततो रसभे स्वभे धनागमो धनप्राप्तिः स्यादित्यर्थः। अशुभफलदायां संक्रांतौ दानमाह नारदः। "तिलोपरि लिखेच्चक्रं त्रित्रिशूलं त्रिकोणकम्। तत्र हेम विनिक्षिप्य दद्याद्दोषापनुत्तये॥" इति॥ १८॥

अथ कार्यविशेषे ग्रहविशेषबलं सामान्यतो ग्रहबलं चोपजात्याऽऽह——

**नृपेक्षणं सर्वकृतिश्च संगरः शास्त्रं विवाहो गमदीक्षणे रवेः॥ वीर्येऽथ ताराबलतो विधुर्विधोर्बलाद्रविस्तद्बलतः शुभाः परे॥ १९॥**

नृपेक्षणामिति ॥ खेरिति ल्यब्लोपे पंचमी । रविवारमारभ्य एतानि कार्याणि । यथा खेः अर्कस्य बले वारे नृपेक्षणं राजदर्शनं विधेयम् । एवं चंद्रादावपि व्याख्येयम् । चंद्रे सर्वकृतिः सर्वकृत्यानि । भौमे संगरो युद्धम् । बुधे शास्त्रमध्येयमध्याप्यं वा । गुरौ विवाहः । शुक्रे गमनम् । शनौ दीक्षणं यागादिदीक्षा विधेयेत्यर्थः । अथेति । ताराबलतो विधुः शुभो ज्ञेयः । यदा चंद्रसंक्रमणं स्यात्तदा ताराबलं चेत्तदा सपाददिनद्वयं चंद्रोऽशुभोऽपि शुभः । तारादौष्ट्ये शुभोऽप्यशुभः। एवं विधोर्बलाद्रविः संक्रमणेऽशुभोऽपि मासपर्यंतं शुभः। शुभस्तु सुतरां समीचीन एव। चंद्रदौष्ट्ये शुभोऽप्यशुभ इत्यर्थः । परे भौमादयः संक्रांतिचिकीर्षवस्तद्बलतः सूर्यबलादशुभा अपि शुभा ज्ञेयाः । रविदौष्ट्ये तु शुभा अप्यशुभाः ॥ १९ ॥

अथाधिमासक्षयमासयोर्लक्षणमुपजात्याऽऽह—

**स्पष्टार्कसंक्रांतिविहीन उक्तो मासेऽधिमासः क्षयमासकस्तु ॥ द्विसंक्रमस्तत्र विभागयोस्तस्तिथेर्हि मासौ प्रथमांत्यसंज्ञौ ॥ २० ॥**

## इति मुहूर्तचिंतामणौ तृतीयं संक्रांतिप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

स्पष्टार्केति ॥ शुक्लप्रतिपदादिदर्शांतश्चांद्रो मासः स चेत्स्पष्टसूर्यसंक्रांत्या विहीनो रहितो भवेत्तदाऽधिमास उक्तः । " चांद्रो मासो ह्यसंक्रांतो मलमासः प्रकीर्तितः । " इति ब्रह्मसिद्धांतोक्तेः। तुर्विशेषे । कदाचित्स चांद्रो मासो द्विसंक्रमः द्वौ संक्रमौ यस्मिन्नसौ द्विसंक्रमः स्पष्टसूर्यसंक्रांतिद्वययुतस्तदा क्षयमाससंज्ञक उक्तः। "आद्यंतदर्शयोर्मध्ये भानोरेव तयोर्यदा । संक्रांतिद्वितयं चेत्स्यात्क्षयमासः स उच्यते॥" इति वसिष्ठोक्तेः। तत्र क्षयमासे जातानां वर्धापने मृतानां श्राद्धे च तिथेर्विभागयोः पूर्वोत्तरदलयोः संबंधेन प्रथमांत्यसंज्ञौ मासौ स्तः स्याताम् । तिथिपूर्वार्द्धजातानां मृतानां च पूर्वमासे वर्धापनं श्राद्धं च विधेयम् । तिथ्युत्तरार्द्धे जातानां मृतानां चोत्तरमासे वर्धापनं

श्राद्धं च विधेयम् । " तिथ्यर्द्धे प्रथमे पूर्वोऽपरस्मिन्नपरस्तथा । मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥" इति । मासादिलक्षणभेदविचारस्तु ग्रन्थगौरवभयान्न लिखितः ॥ २० ॥

अथ ग्रंथांतरसंग्रहः । " योगिनीस्थितकाष्ठातः संक्रांतेरागमो मतः । चन्द्रस्थादिशि दृष्टिः स्याद्गमनं वारदिक् स्मृतम् ॥" इति । क्वचित् । " रवौ संक्रमणे पूर्वं मुखं जीवे तु उत्तरे । प्रत्यङ्मुखं शनौ सोमे शेषे दक्षिणतो मुखम् ॥" इति।"बवे पूर्वमुखं प्रोक्तं बालवे यमदिङ्मुखम् । कौलवे पश्चिममुखं तैतिले चोत्तरे मुखम् ॥ गरे वायव्यदिग्वक्त्रं वाणिज्याग्नेयदिङ्मुखम् । भद्रायामीशदिग्वक्त्रं शकुनौ नैर्ऋतौ मुखम् ॥ चतुष्पादि च पाताले नागे चोर्ध्वमुखं भवेत् । किंस्तुघ्ने सर्वदिग्वक्त्रं संक्रांतिमुखलक्षणम् ॥ " अथ दृष्टिः । " चन्द्रे गुरौ दृक्कथिता कृशानौ सूर्ये सिते नैर्ऋतिकोणगा दृक् । धात्रीसुते दृक् पवने निरुक्ता बुधे शनौ रुद्रदिशीक्षणं भवेत् ॥ " अथ गमनम् । " मन्दे चन्द्रे गमः सौम्ये बुधे भौमे च वारुणे । रवौ शुक्रे गमो याम्ये गुरौ प्राग्गमनं स्मृतम् ॥ " इति ॥

इति श्रीदैवज्ञानंतसुतदैवज्ञरामविरचितमुहूर्तचिं० स्वकृतायां प्रमिताक्षरायां टीकायां संक्रांतिप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

---

# अथ गोचरप्रकरणप्रारंभः ॥ ४ ॥

अथ गोचरप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र जन्मराशेः सकाशाद्ग्रहाणां चारवशेन यच्छुभाशुभफलं तद्गोचरफलमित्युच्यते । तत्र रविचंद्रयोर्गोचरफलमुपजातिकयाऽऽह—

**सूर्यो रसांत्ये खयुगेऽग्निनंदे शिवाक्षयोर्भौमशनी तमश्च ॥ रसांकयोर्लाभशरे गुणांत्ये चंद्रोंऽबराब्धौ गुणनंदयोश्च ॥ १ ॥**

सूर्य इति ॥ रसांत्य इत्यादौ समाहारद्वंद्वः। शिवाक्षयोरित्यादावितरेतरयोगः । अंबराब्धावित्यादौ " अनित्यमागमशासनम् " इति

नुमभावो ध्येयः। एवं सर्वत्र। स्वजन्मराशेरिति पंचमश्लोकस्थम-त्राध्याहार्यम्। ततः सूर्यः क्रमाद्रसांत्ये शुभो विद्धश्च स्यात्। सूर्यो जन्मराशेः सकाशात् षष्ठस्थाने शुभः। यदि तत एव जन्मराशेर्द्वादशस्थानस्था अन्ये ग्रहाः स्युस्तदा विद्धः सूर्यः शुभोऽप्यशुभफलदाता। अत्र शनेः सूर्यपुत्रत्वात्तद्वेधो नांगीकृतः। यतः पितुर्जनकस्य सुतसंबंधिवेधं नाहुः। सुतस्यापि पितृसंबंधिनं वेधं नाहुः। जन्मराशेर्दशमे सूर्यः शुभश्चेच्चतुर्थस्थाने शनिवर्जिता अन्ये ग्रहाः स्युस्तदा विद्ध इत्येवं श्लोकत्रयं सम्यग्व्याख्येयम्। तथाग्निनंदे तृतीयनवमयोः शिवाक्षयोरेकादशपंचमयोः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः। भौमेति। भौमशनी तमोऽगुश्च त्रयोऽपि जन्मराशितः रसांकयोः लाभशरे गुणांत्ये क्रमाच्छुभा विद्धाश्चेत्यर्थः। परंतु शनेः सूर्यवेधो नास्तीत्युक्तं प्राक्। चन्द्रोंऽबराब्धौ इत्यग्रे ॥ १ ॥

अथ बुधगुरुशुक्राणां गोचरफलमुपजातिकेंद्रवज्राभ्यामुपजातिकापूर्वार्द्धेन चाह—

लाभाष्टमे चाद्यशरे रसांत्ये नगद्वये ज्ञो द्विशरेऽब्धिरामे ॥ रसांकयोर्नागविधौ खनागे लाभव्यये देवगुरुः शराब्धौ ॥ २ ॥ द्व्यंत्ये नवांशेऽद्रिगुणे शिवाद्रौ शुक्रः कुनागे द्विनगेऽग्निरूपे ॥ वेदांबरे पंचनिधौ गजेषौ नंदेशयोर्भानुरसे शिवाग्नौ ॥ ३ ॥ क्रमाच्छुभो विद्ध इति ग्रहः स्यात्पितुः सुतस्यात्र न वेधमाहुः ॥

चन्द्र इति। लाभाष्टमे इति। द्व्यंत्य इति। क्रमादिति ॥ जन्मभात् अंबराब्धौ गुणनंदयोः लाभाष्टमे आद्यशरे रसांत्ये नगद्वये चंद्रः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः। चन्द्रस्य बुधवेधो नास्ति। अथ ज्ञ इति। जन्मभात् द्विशरे अब्धिरामे रसांकयोः नागविधौ खनागे लाभव्यये ज्ञो बुधः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः। अत्र चन्द्रवेधो

नास्ति । अथ देवगुरुरिति । जन्मभात् शराब्धौ द्व्यंत्ये नवांशे अद्रिगुणे शिवाष्टौ देवगुरुर्बृहस्पतिः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः। अथ शुक्र इति । जन्मराशेः सकाशात् कुनागे द्विनगे अग्निरूपे वेदांबरे पंचनिधौ गजेषौ नंदेशयोः भानुरसे शिवाग्नौ शुक्रः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । अत्रेदं तात्पर्यम्। सूर्यो रसांत्ये इत्यादिप्राक्पठितस्थानेषु विद्यमानः स स ग्रहः शुभदः । तदनंतरपठितस्थानेषु स्थितोऽशुभफलदाता । अर्थादेवानुक्तस्थानेषु न शुभो नाप्यशुभ इति ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ वामवेधं शुक्लपक्षे चंद्रबलं चोपजात्युत्तरार्द्धेनाह—

**दुष्टोऽपि खेटो विपरीतवेधाच्छुभो द्विकोणे शुभदः सितेऽब्जः ॥ ४ ॥**

दुष्टोऽपीति ॥ दुष्टोऽपि स्वजन्मराशेः सकाशादनंतरपठितविरुद्धस्थानस्थितोऽपि विपरीतवेधाद्वामवेधाच्छुभः।यथा सूर्यो द्वादशेऽनिष्ट इत्युक्तं प्राक् स यदि शनिवर्जितैर्ग्रहैः षष्ठस्थानस्थितैर्विद्धः सन् शुभफलदाता । एवमुत्तरस्थानास्थितो यः कश्चिद्ग्रहः प्राक्पठितस्थानस्थितैर्ग्रहैर्विद्धः शुभ इति सर्वत्र व्याख्येयम् । अयमेव वामवेध इत्युच्यते । कश्यपः। " अपविद्धो ग्रहः किंचिन्न ददाति शुभं फलम् । वामवेधविधानेन त्वशुभोऽपि शुभप्रदः ॥" द्विकोणे इति । सिते शुक्लपक्षे अब्जश्चंद्रो द्वितीयनवपंचमेषु स्थितः शुभदः । अत्रापि क्रमेण षष्ठाष्टमचतुर्थस्थानस्थितैर्बुधवर्जितैर्ग्रहैर्यदि न विद्धस्तदा शुभ इति ध्येयम् । नारदः ।" शुक्लपक्षे शुभश्चंद्रो द्वितीयनवपंचमे । रिपुमृत्यंबुसंस्थैश्च न विद्धो गगनेचरैः ॥ " इति ॥ ४ ॥

अथ द्विविधमतमुपजात्याऽऽह—

**स्वजन्मराशेरिह वेधमाहुरन्ये ग्रहाधिष्ठितराशितः सः ॥ हिमाद्रिविंध्यांतर एव वेधो न सर्वदेशेष्विति काश्यपोक्तिः ॥ ५ ॥**

स्वजन्मराशेरिति ॥ इह द्विविधवेधविधौ अन्ये नारदादयः स्वजन्मराशेः सकाशाद्द्विविधमपि वेधमाहुः । तथा चोभयत्रापि नारदेन जन्मत इत्युक्तम् । अन्ये कश्यपादयः स पुनर्द्विविधो ग्रहाधिष्ठितराशितः ग्रहो यस्मिन्राशौ तिष्ठति तत एव क्रमाद्वेधो वामवेधश्च भवति । यथा सूर्यो जन्मराशेः षष्ठस्थितः शुभः स सूर्यः स्वाक्रांतराशेर्द्वादशस्थानस्थितैः शनिवर्जितैर्ग्रहैर्न विद्धः । तथा सूर्यो द्वादशस्थानस्थितोऽनिष्टः स सूर्यः स्वाक्रांतराशेः षष्ठस्थानस्थितैः शनिवर्जितैर्ग्रहैर्विद्धश्चेत्तदा शुभफलद इत्यर्थः । अथ द्विविधवेधस्यैव विषयकल्पनोच्यते । हिमाद्रीति । हिमाचलविंध्याचलयोर्मध्यवर्तिन्येव देशे स वेधो ज्ञेयः । न सर्वदेशेष्विति काश्यपोक्तिः । काश्यपवचनं यदाह । " ज्ञातव्यं जन्मराशेस्तु निखिलं यद्बलाबलम् । हिमाद्रिविंध्ययोर्मध्ये वेधजं तद्ग्रहालयम् ॥ " अपरे तु । सूर्यो रसांत्य इति क्रामिकवेधो जन्मराशेरेव ज्ञेयः । विपरीतवेधस्तु ग्रहाधिष्ठितराशित एवेति वदंति । " जन्मतः क्रमवेधः स्याद्वामे वेधो ग्रहालयात् । " इति । इदमपि हिमाद्रिविंध्यांतरविषयमेवेत्यन्ये । एतज्ज्ञानं दुर्घटमित्याह नारदः । " अज्ञात्वा द्विविधं वेधं यो ग्रहज्ञो बलं वदेत् । स मृषावचनाभाषी हास्यं याति जने सदा ॥ " इति । एवं गोचरदौष्ट्ये यात्रादि न कार्यम् । तत्र शांतिमाह नारदः । " ग्रहेषु विषमस्थेषु शांतिं यत्नात्समाचरेत् । " इति । " सौम्येक्षितोऽनिष्टफलः शुभदः पापवीक्षितः । निष्फलौ तौ ग्रहौ स्वेन शत्रुणा चावलोकितः ॥ नीचराशिगतः स्वस्य शत्रुक्षेत्रगतोऽपि वा । शुभाशुभफलं नैव दद्यादस्तंगतोऽपि वा ॥ " इति । एतादृशस्थले दुष्टत्वभावादेव शांत्यभाव इति फलितोऽर्थः ॥ ९ ॥

अथ गोचरप्रस्तावात् ग्रहणीयनक्षत्रफलं ग्रहणीयराहुगोचरफलं ग्रहणाशुभप्रतीकारं च दुष्टग्रहणदर्शननिषेधं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

**जन्मर्क्षे निधनं ग्रहे जनिभतो घातः क्षतिः श्रीर्व्यथा**
**चिंता सौख्यकलत्रदौस्थ्यमृतयः स्युर्माननाशः**

**सुखम् ॥ लाभोऽपाय इति क्रमात्तदशुभध्वस्त्यै जपः स्वर्णगोदानं शांतिरथो ग्रहं त्वशुभदं नो वीक्ष्यमाहुः परे ॥ ६ ॥**

जन्मर्क्ष इति ॥ यस्य जन्मनक्षत्रे ग्रहे ग्रहणे सति निधनं मरणं स्यात् । वसिष्ठः । " यस्यैव जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ । तस्य व्याधिभयं घोरं जन्मराशौ धनक्षयः ॥ " इति । विशेषो भार्गवीये । " यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते । राज्यभंगं सुहृन्नाशं मरणं चात्र निर्दिशेत् ॥ " इति । राज्यनक्षत्रे राज्याभिषेकनक्षत्रे । अथ राशिफलं जनिभत इति । जन्मराशेरारभ्य ग्रहणे सति क्रमेण घातादिकं फलं भवति । यथा जन्मराशौ ग्रहणे सति घातः शरीरपीडा । द्वितीयराशौ क्षतिर्द्रव्यनाशः । तृतीयराशौ श्रीर्लक्ष्मीप्राप्तिः । चतुर्थराशौ व्यथा शरीरपीडा । पंचमराशौ चिंता पुत्रादीनाम् । षष्ठराशौ सौख्यम् । सप्तमराशौ कलत्रदौस्थ्यं स्त्रीकष्टम् । अष्टमराशौ मृतिर्मरणम् । नवमराशौ माननाशः । दशमराशौ सुखम् । एकादशराशौ लाभः प्राप्तिः । द्वादशराशौ अपायो नाशः। आत्मन इति केचित् । द्रव्यस्येत्यपरे । इदं षण्मासपर्यंतमिति ज्ञेयम् । तदनंतरं ग्रहणांतरसंभावनयोक्तं दैवज्ञमनोहरे । " घातं हानिमथ श्रियं जननभाद्व्यस्तिं च चिंतां क्रमात्सौख्यं दारवियोजनं च कुरुते व्याधिं च मानक्षयम् । सिद्धिं लाभमपायमर्कशशिनोः षण्मासमध्ये ग्रहम् । " इति । अथाशुभसूचकग्रहणप्रतीकारमाह । तदशुभेति । तस्य ग्रहणाशुभस्य ध्वस्त्यै नाशाय जपस्वर्णगोदानं जपो गायत्र्यादिमंत्राणाम् । स्वर्णं सुवर्णम् । गौर्धेनुर्भूमिर्वा । उपलक्षणत्वादन्येषां रूप्यादीनां यथाशक्ति दानं कार्यमिति शेषः। " तद्दौस्थ्यप्रणुदुक्तवज्जपविधिस्वर्णादिदानं भवेत् । " इत्युक्तेः । दानं ज्योतिर्निबंधे । "सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं ताम्रभाजनम् । सदक्षिणं सवस्त्रं च श्रोत्रियाय निवेदयेत् ॥"

मन्त्रश्च। "तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन। हेमनागप्रदानेन मम शांतिप्रदो भव॥" इति। स्कांदे। "गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं विशेषतः। ग्रहणे क्लेशनाशाय दैवज्ञाय निवेदयेत्॥" इति। किं चात्र देशविशेषः पात्रविशेषो द्रव्यविशेषश्च नापेक्षित इत्याह व्यासः। "सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः। सर्वं भूमिसमं दानं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥" इति। अन्यच्च। "ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते। मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते॥" इति। तस्मिन्काले जपादिकमपि विधेयम्। "सूर्येंदुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम्।" इति शिवरहस्योक्तेः। आदिशब्दाद्देवार्चनादि कार्यम्। अथ स्थानविशेषेण ग्रहणमरिष्टजनकमित्युक्तम्। तद्दृष्टमुतादृष्टमपीति संशये निर्णयमाह। अथो इति। तुर्विशेषे। परे आचार्याः अशुभदं ग्रहणं तु नो वीक्ष्यं न द्रष्टव्यमित्याहुः। उक्तं च। "जन्मसप्ताष्टरिःफांकदशमस्थे निशाकरे। दृष्टोऽरिष्टप्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधने तथा॥" जन्मर्क्षं जन्मनक्षत्रम्। निधनं वधतारा सप्तमी। अत्र दृष्ट इति पदश्रवणाद्दर्शनं चाक्षुषं विवक्षितमिति तेषामाशयश्चाक्षुषज्ञान एव दृशेर्मुख्यत्वमिति परेषां मतम्। तदसत्। "अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः। शीघ्रमंदोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः॥" इति सूर्यसिद्धांते। पातानामदृश्यतोक्ता। पातो राहुश्च पर्यायः। "दक्षिणोत्तरयोरेवं पातो राहुश्च रंहसा। विक्षिपत्येष विक्षेपश्चंद्रादीनामपक्रमात्॥" इति सूर्यसिद्धांतोक्तेः। अतः पातानामदृश्यत्वाद्राहोर्दर्शनमेवानुपपन्नम्। ननु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोश्छादको राहुर्दृश्यत एव अत एव राहुग्रस्ते निशाकरे इत्यादिपुराणोक्तिरपीति चेन्न। "भानोर्भार्धे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽपि वा। शशांकपाते ग्रहणं कियद्भागाधिकोनके॥" इत्युपक्रम्य। "छादको भास्करस्येंदुरधःस्थो घनवद्भवेत्। भूछायां प्राङ्मुखश्चंद्रो विशत्यस्य भवेदसौ॥" भूछाया अस्य च्छादको भवेदित्यर्थः। सूर्यसिद्धांते छाद्यच्छादकभावोऽभिहितः स्पष्ट एव।

पुराणविरोधपरिहारस्तु भास्करेणैव राहुः कुभामंडलगः शशांक-मित्यादिनोक्तः वराहेणापि तस्मिन्काले सान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते राहुरित्युक्तं तस्माद्राहोर्दर्शनं नास्त्येव। त्वन्मते दर्शनं चाक्षुषमेव विवक्षितम्। एवं च राहोर्दर्शनं राहुदर्शनमिति तत्पुरुषोऽनुपपन्नः। तस्माद्दर्शनशब्देनोपरागो लक्ष्यते। राहुदर्शनं राहूपरागस्तस्मिन्राहुद-र्शने इति। अयमर्थः। राहुर्नाम पातस्तत्संबंधेन दर्शनमुपराग इति। न च राहुरेव लक्षणयोपरागपरस्तस्य दर्शनमिति पूर्वपक्षाभिमतार्थ-सिद्धिरिति वाच्यम्। लक्षणा तु अर्थांतरासंभवेति वक्तव्या। "अत्यन्तादर्शने राहोस्तथा चात्यंतदर्शने। प्रजापीडा विनिर्दे-श्या व्याधिदुर्भिक्षकारकैः॥" इति विष्णुधर्मोत्तरादिवाक्येषु पदां-तरासन्निधानाद्राहुशब्देनोपरागो लक्ष्यते। इह च राहोः पाताख्यं ग्रहगतिरूपमर्थांतरमस्तीत्यतो राहुदर्शनग्रहपातयोः समानार्थकता-स्तीत्येवं सिद्धमिति। प्रागुक्तानां सर्ववचसां ग्रहणे स्नायादित्येक-वाक्यार्थः फलितो भवति। केचित्तु दर्शनादर्शनविषयकयोस्तु वि-ध्योस्तुल्यबलत्वात्सकृद्दृष्ट्वा स्नायादिति वदंति तदसत्। जन्मसप्ताष्ट-रिःफांकेत्यादिना सामान्यतो निषिद्धस्य उपरक्तदर्शनस्य। "नेक्षे-तोद्यंतमादित्यं नास्तं यांतं कदाचन। नोपरक्तं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम्॥" इति। मनूक्तोपरक्तदर्शनस्य पुनर्निषेधानुपपत्तेः। प्रागुक्तदिशाराहुदर्शनपदस्य राहूपरागलक्षकत्वेन तुल्यबलत्वा-भावात् तस्मादुपरक्तयोः सूर्याचंद्रमसोर्यस्य कस्यापि दर्शननिषे-धसत्त्वात् ग्रहणे च स्नानदानाद्युक्तेस्तज्ज्ञानं च ज्योतिःशास्त्रैक-देशगणितग्रंथेभ्यो बुद्ध्वा तस्मिन्काले दानादि विधेयमिति सिद्धांतः। अत एव मेघाद्यावृतेऽप्युपरागे स्नानादि विधेयमेव। रात्रौ सूर्यो-परागे दिवा चंद्रोपरागे च स्नानादिकं तु वचनान्न भवति। तदुक्तं निगमे। "सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चंद्रग्रहो यदि। तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचित्॥" इति। तादृशे ग्रहणे दुष्टेऽपि

१ तस्करैरित्यपि पाठः।

दोषो नास्तीत्यपि सूचितम्। जाबालिवचनं तु। " संक्रांतेः पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कलाः। चंद्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरः॥ " इति। ग्रस्तस्यास्तमनपर्यंतं दर्शनगोचरत्वात्तावान् कालः पुण्यकालो भवतीति व्याचख्युः। तदुक्तं विश्वरूपनिबंधे। " दिवा चंद्रग्रहो रात्रौ सूर्यपर्व न पुण्यदम्। संधिस्थं पुण्यवज्ज्ञेयं यावद्दर्शनगोचरः॥ " इति। अन्ये तु। " सूर्यस्यादर्शनं रात्रिर्दिनं तद्दर्शनात्मकम्। भुजवृत्तादुपरि च स्थितोऽर्को दर्शनं स्मृतम्॥ " इति वसिष्ठसिद्धांतवचनान्मेघावृतेऽनावृते चोपरागे गणितागतास्थितिघटिकाः पुण्यकाल इत्याहुः। यत्राकाशो भूम्या सह संलग्नामेव दृश्यते स प्रदेशो भुजशब्दवाच्यः। अर्क इत्युपलक्षणं चंद्रादिग्रहनक्षत्राणाम्। विष्णुधर्मोत्तरे। " अहोरात्रं न भोक्तव्यं चंद्रसूर्यग्रहो यदा। मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्॥ " इति। ग्रस्तास्ते गुरुः। " ग्रस्तावेवास्तमानं तु रवींदू प्राप्नुतो यदि। तयोः परेद्युरुदये स्नात्वाऽभ्यवहरेन्नरः॥ " इत्यनयोर्वाक्ययोर्दर्शनोदयशब्दौ भुजवृत्तोपरिस्थितत्वोपलक्षकौ। अन्यथा मेघाद्यावरणेन परदिवसेऽपि दर्शनाभावे उपवासः प्रसज्येत। तथा यत्र स्पर्शकाले ग्रहणं दृष्ट्वा स्नानं विहितं तत्रांतरे मेघावरणाद्रविचंद्रयोर्दर्शनाभावो दिवसद्वयं त्रयं वा स्यात्तत्राप्युपवासप्रसंगः स्यात्। न च शिष्टास्तथा चरंति। तस्माद्दृशिर्दर्शनार्थ एव। तस्माच्छास्त्रीयग्रहणज्ञाने सति भेघानावृतेऽपि ग्रहणे ग्रहणमदृष्ट्वैव चक्षुष्मतांधेन गंतुमशक्तेन च वृद्धादिना स्नानादिकं विधेयमित्यरिष्टजनकत्वाभावेऽपि ग्रहणदर्शननिषेधः। किं पुनरयामेति तात्पर्यार्थः। अत एव भागवते। कुरुक्षेत्रे स्नानार्थं मिलितानां पांडवीयलोकानां मध्ये धृतराष्ट्रोऽपि परिगणित इति शिष्टाचारोऽप्येवमेवास्ति। एवं च सत्यरिष्टजनकत्वाभावेऽपि ग्रहणदर्शननिषेधः किं पुनररिष्टजनकत्वे। तस्माज्जन्मसप्तांकेति पद्यं निर्मूलत्वादुपेक्ष्यम्। किं च प्रत्यक्षोपलब्धवसिष्ठमत्स्यपुराणादिवाक्ये

दर्शनपदाभावाच्च । अत एव मूले परे इति पदं प्रयुक्तम् । शांतिस्तु दर्शनाभावेऽपि विधेया । यतोऽरिष्टयोगानां स्वरूपसतामेवारिष्टजनकत्वात् । अथ ग्रहणशांतिः । " येषां तु विषमस्थाने राहुश्चंद्रमुपक्रमेत् । कर्मक्षयपरिक्लेशान्प्राप्नुवंति च ते जनाः ॥ पितृपक्षविनाशाय सूर्यस्थाने भवेद्ग्रहः । होरायां गृह्यते यस्य नक्षत्रे वा निशाकरः ॥ प्राणसंदेहमाप्नोति अथ वा रणमृच्छति । यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे ग्रहणे शशिभास्करे ॥ तज्जातानां भवेत्पीडा ये नराः शांतिवर्जिताः ॥ संक्रम इनस्य येषां जन्मत्रितयेऽथवा ग्रहणम् । बहुरोगमृत्युजननोक्तदानाहुतयो जपाश्च कर्तव्याः ॥ तस्माद्दानं च होमं च देवार्चनजपौ तथा । उपरागाभिषेकं च कुर्याच्छांतिर्भविष्यति ॥ " नक्षत्रदानं यथा । " रूपं विधाय भुजगस्य तु कांचनेन पिष्टेन वा हिमकरे दिवसाधिपे च । ग्रस्ते त्रिजन्मदिवसे तमसा प्रदद्याद्विप्राय वेदविदुषे सुपरीक्षिताय ॥ यस्य राशिं समासाद्य भवेद्ग्रहणसंभवः । तत्र स्नानं प्रवक्ष्यामि मंत्रौषधिसमान्वितम् ॥ चंद्रोपरागं संप्राप्य कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् । संपूज्य चतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥ पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादिकम् । स्थापयेच्चतुरः कुंभानग्रतः सागरानिव ॥ गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्ध्रदगोकुलात् । राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥ पंचगव्यं च कुंभेषु शुद्धमुक्ताफलानि च । रोचनं पद्मकं शंखं पंचरत्नसमन्वितम् ॥ स्फटिकं चंदनं श्वेतं तीर्थवारि च पल्लवान् । गजदंतं कुंकुमं च सर्षपोशीरगुग्गुलून् ॥ तत्सर्वं निक्षिपेत्पूर्वं कुंभेष्वावाहयेत्सुरान् । सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ॥ आयांतु मम शांत्यर्थं दुरितक्षयकारकाः । तिलहोमं व्याहृतिभिः सहस्रं चाष्टसंयुतम् ॥ एवं कृत्वा प्रयत्नेन स्नानकर्म समारभेत् । आमंत्र्य नवभिर्मंत्रैः कुंभान्संकल्पपूर्वकम् ॥ योऽसौ वज्रधरो देवो ह्यादित्यानां प्रभुर्मतः । सहस्रनयनः शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः । चंद्रोपरागसंभूतामग्निः पीडां व्यपोहतु ॥ यः कर्मसाक्षी लोकानां

धर्मो महिषवाहनः । यमश्चंद्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ निर्ऋतिः कौणपो देवः प्रलयानलसन्निभः । खड्गव्यग्रोऽतिभीमश्च रक्षःपीडां व्यपोहतु ॥ नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः । स जलाधिपतिश्चंद्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ प्राणरूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृगप्रियः । वायुश्चंद्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः । चंद्रोपरागकलुषं धनक्षेत्रे व्यपोहतु ॥ योऽसाविंदुयुतो देवो भवानीपतिरीश्वरः । चंद्रोपरागजां पीडां स नाशयतु शंकरः ॥ त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्मविष्ण्वर्कयुक्तानि तानि पापं दहंतु मे ॥ अभिषिच्य ततो मैत्रान्विलिख्य कनकान्वितान् । वस्त्रे पट्टेऽथ वा भूर्जे पंचरत्न-समन्वितान् ॥ यजमानस्य शिरसि निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः । ततोऽतिवाहयेद्वेलामुपरागानुमानिनीम् ॥ प्राङ्मुखं पूजयित्वा ते नत्वा चाभीष्टदेवतें । चन्द्रग्रहे विनिर्वृत्ते कृतशौचात्मभंगलः ॥ कृत-स्नानश्च तत्सर्वं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्ना-नं समाचरेत् ॥ न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न च बंधुधनक्षयः । सूर्य-ग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत् ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं श्राव-येद्वापि वा नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वत्र सुखवान् भवेत् ॥ " इति । इति मत्स्यपुराणोक्ता ग्रहणशांतिः । अथौषधीभिर्ग्रहण-शांतिः । " रोचनं पद्मकं शंखं कुंकुमं रक्तचन्दनम् । शुक्तिस्फटिक-तीर्थांबुसितसर्षपगुग्गुलून् ॥ मधुकं देवदारुं च विष्णुक्रांतां शताव-रीम् । एलां च सहदेवीं च निशाद्वितयमेव च ॥ दूर्वांकुरोशीरशमी-शिलाजित्सवर्थिसर्वौषधिपंचमृद्भिः । स्नानं विदध्याद्ग्रहणे रवींद्वोः पीडाकरं शांतिवहं च यस्य ॥ " इति ॥ ६ ॥

अथ चन्द्रबले विशेषमनुष्टुप्छंदसाह—

**पापांतः पापयुग्द्यूने पापाच्चंद्रः शुभोऽप्यसन् ॥**
**शुभांशे वाधिमित्रांशे गुरुदृष्टोऽशुभोऽपि सन् ॥ ७ ॥**

पापांत इति ॥ शुभफलदोऽपि चंद्रः पापांतः पापद्वयमध्यवर्ती पापयुक्पापग्रहयुक्तः पापात् द्यूने सप्तमे वर्त्तमानस्तदा शुभोऽपि असन् अशुभ एव । यदा त्वशुभोऽपि चन्द्रः शुभांशे शुभग्रहनवांशे अथवा अधिमित्रनवांशे तथा गुरुणा दृष्टः सन् शुभफलदाता भवेत् ॥

अन्यदप्यनुष्टुभाह—

**सितासितादौ सद्दृष्टे चंद्रे पक्षौ शुभावुभौ ॥**
**व्यत्यासे चाशुभौ प्रोक्तौ संकटेऽब्जबलं त्विदम् ॥८॥**

सितेति ॥ शुक्लपक्षादौ प्रतिपदि समीचीनचंद्रे सति संपूर्णः शुक्लः शुभः । असितादौ कृष्णपक्षप्रतिपदि दृष्टे चन्द्रे सति संपूर्णः कृष्णः शुभः । व्यत्यासे च पूर्वोक्तादर्थाद्वैपरीत्ये द्वावपि पक्षावनिष्टौ. यदा शुक्लप्रतिपदि चन्द्रो दुष्टश्चेत्तदा सकलपक्षोऽनिष्टः । कृष्णप्रतिपदि चन्द्रः शुभश्चेत्तदा संपूर्णः कृष्णपक्षोऽनिष्टः । इदमेतावदब्जबलं चन्द्रबलं संकटे विवाहयात्रादाववश्यकर्त्तव्ये तात्कालिकचंद्रबलाभावे च ग्राह्यम् । नान्यथेत्यर्थः ॥ ८ ॥

अथ ग्रहदौष्ट्यपरिहारपूर्वकं तुष्टिसंपादनार्थं नवरत्नसमुदायधारणं शालिन्याह—

**वज्रं शुक्रेऽब्जे सुमुक्ताप्रवालं भौमेऽगौ गोमेदमार्कौ सुनीलम्॥ केतौ वैदूर्यं गुरौ पुष्पकं ज्ञे पाचिः प्राङ्माणिक्यमर्के तु मध्ये ॥ ९ ॥**

वज्रमिति ॥ अत्र सुवर्णमुद्रिकायां नवधा भक्तायां प्रागादिक्रमेण नव रत्नानि निधेयानि । तत्र प्रागिति पञ्चम्यंतमव्ययं पञ्चमी चेयं ल्यब्लोपे । तेन प्रागादिदिक्त इत्ययमर्थो जातः । तत्र शुक्रप्रीतये पूर्वस्यां दिशि वज्रं श्वेतहीरकं निधेयम् । एवं चन्द्रप्रीतये सुमुक्ता शोभनमुक्ताफलमाग्नेय्याम् । भौमप्रीत्यर्थं दक्षिणस्यां प्रवालम् । अगौ राहौ नैर्ऋत्यां गोमेदम् । आर्कौ शनौ पश्चिमायां शोभनं

नीलम्। केतौ वायव्यां वैदूर्यम्। गुरौ उत्तरस्यां पुष्पकं पुष्पराजम्। बुधे ईशान्यां पाचिः। मध्ये मध्यमकोष्ठे अर्कप्रीत्यै माणिक्यं निधेयम्॥ ९॥

अथ सति सामर्थ्ये नवरत्नसमुदायधारणमुक्तम् इदानीमसति सामर्थ्ये यद्ग्रहकृतदौष्ट्यं तद्ग्रहरत्नधारणमिंद्रवज्रयाह—

**माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि गारुत्मकं पुष्पकवज्रनीलम्॥ गोमेदवैदूर्यकमर्कतः स्यू रत्नान्यथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णम्॥ १०॥**

माणिक्येति॥ सूर्यप्रीत्यर्थं माणिक्यं धार्यम्। एवं चन्द्रस्य मुक्ताफलम्। भौमस्य विद्रुमं प्रवालम्। बुधस्य गारुत्मकं गरुडः पाचिः। गुरोः पुष्पकं पुष्पराजः। शुक्रस्य वज्रं हीरकः। शनेर्नीलं लहसुणिया। राहोर्गोमेदम्। केतो वैदूर्यमित्येवमर्कतोऽर्कादीनां ग्रहाणां रत्नानि धार्याणि स्युः। तत्र यद्ग्रहकृतदौष्ट्यं तस्य ग्रहस्य तुष्ट्यै तद्रत्नमेव धार्यमित्यर्थः। अथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णमित्यग्रिमश्लोकेन संबंधः॥ १०॥

अथ महामूल्यरत्नधारणस्यासामर्थ्येऽल्पमूल्यानि रत्नानि तारावलं च शालिन्याह—

**धार्यं लाजावर्तकं राहुकेत्वो रौप्यं शुक्रेंद्वोश्च मुक्ता गुरोस्तु॥ लोहं मंदस्यारभान्वोः प्रवालं ताराजन्मर्क्षात्त्रिरावृत्तितः स्यात्॥ ११॥**

धार्यमिति॥ अथो ज्ञस्य बुधस्य मुदे संतोषार्थं सुवर्णं यथाशक्ति धार्यम्। राहुकेत्वोस्तुष्ट्यै लाजावर्तकं मणिविशेषो धार्यः। शुक्रेंद्वोस्तुष्ट्यै रूप्यम्। गुरोस्तुष्ट्यै मुक्ताफलम्। शनेस्तुष्ट्यै लोहम्। आरभान्वोस्तुष्ट्यै प्रवालं धार्यम्। तारेति। यद्दिने तारावलं चिकीर्षितं तद्दिने या तारा सा जन्मनक्षत्रात् त्रिरावृत्तितः पुनः पुनरावृत्तित्रयेण गणनीया स्यात। त्रिरिति सुजंतमव्ययम्।

जन्मनक्षत्रात् दिननक्षत्रे गणिते नवभिर्भक्ते तिस्र आवृत्तयो भवंति अवशिष्टतारायाः शुभमशुभं च व्याख्यातमिति फलितोऽर्थः ॥११॥

अथ शेषक्रमेण सकलास्तारासंज्ञा अनुष्टुभाह—

**जन्माख्यसंपद्विपदः क्षेमप्रत्यरिसाधकाः ॥**
**वधमैत्रातिमैत्राः स्युस्तारा नाम सदृक्फलाः ॥ १२ ॥**

जन्माख्येति ॥ स्पष्टोऽर्थः ॥ १२ ॥

अथावश्यककृत्ये दुष्टताराणां प्रकारद्वयेन परिहारं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

**मृत्यौ स्वर्णतिलान्विपद्यपि गुडं शाकं त्रिजन्मस्वथो दद्यात्प्रत्यरितारकासु लवणं सर्वो विपत्प्रत्यरिः ॥ मृत्युश्चादिमपर्यये न शुभदोऽथैषां द्वितीयेंऽशकानादिप्रांत्यतृतीयका अथ शुभाः सर्वे तृतीये स्मृताः ॥ १३ ॥**

मृत्यौ स्वर्णतिलानिति ॥ मृत्यौ वधतारायां स्वर्णतिलान् यथाशक्ति ब्राह्मणाय दद्यात् । विपदि विपत्तारायां गुडमिक्षुविकारं दद्यात् । त्रिजन्मसु तिसृषु जन्मतारासु शाकं वृंताकादि दद्यात् । अथो प्रत्यरितारकासु पंचमतारायां लवणं दद्यात् । नारदः । "जन्मत्रिपंचसप्ताख्या तारानिष्टफला स्मृता । शाकं गुडं च लवणं सतिलान्कांचनं क्रमात् ॥ अनिष्टपरिहाराय दद्याद्दानं द्विजातये ।" इति । अथ द्वितीयपरिहारः तत्रादिमपर्यये प्रथमावृत्तौ विपत्प्रत्यरिमृत्युश्च तृतीयपंचमीसप्तम्यस्ताराः सर्वा अपि सामान्यतः षष्टिघटिकात्मिका न शुभदाः स्युः । अथ द्वितीये पर्यये द्वितीयावृत्तौ विपत्प्रत्यरिमृत्यूनामादिप्रांत्यतृतीयका अंशा न शुभदाः । विपत्तारायामाद्यांशः प्रथमचरणो निषिद्धः । प्रत्यरितारायां प्रांत्योंऽशश्चतुर्थचरणस्त्याज्यः । मृत्युतारायां तृतीयोंऽशस्तृतीयचरणस्त्याज्य

इति। अथ तृतीयावृत्तौ विपत्प्रत्यरिमृत्युश्चैते सर्वे षष्टिघटिकात्मिका अपि शुभाः। उक्तं च दीपिकायाम्। "पर्याये प्रथमे वर्ज्या विपत्प्रत्यरिनैधनाः।" इति ॥ १३ ॥

अथ चंद्रावस्थागणनोपायमनुष्टुभाह—

**षष्टि ६ घ्नं गतभं भुक्तघटीयुक्तं युगा ४ हतम् ॥**
**शराब्धिहृल्लब्धतोऽर्कशेषेऽवस्थाः क्रियाद्विधोः ॥१४॥**

षष्टिघ्नमिति ॥ अश्विनीमारभ्य गतभानि षष्ट्या गुण्यानि वर्तमाननक्षत्रभुक्तघटीयुतानि तानि पुनर्युगैश्चतुर्भिराहतानि। शराब्धिहृत् (४५) पंचचत्वारिंशता भाज्यानि। यल्लब्धमागतं गतावस्थास्ताः शेषं वर्तमानावस्थायाः तत्र लब्धांकस्यापि द्वादशाधिक्ये द्वादशभिर्भागशेषं प्रवासाद्यवस्थाश्चंद्रस्य गताः स्युः। ता अवस्था मेषराशेः पुंसः प्रवासादिसंज्ञाः वृषराशेर्नष्टादिसंज्ञाः। एवं मिथुनादिदशराशिषु मृतादिसंज्ञा ह्यवस्थाः क्रमेण भवंतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

अथ द्वादशावस्थानामानि सफलान्याह—

**प्रवासनाशौ मरणं जयश्च हास्यारतिक्रीडितसुप्तभुक्ताः ॥ ज्वराख्यकंपस्थिरता अवस्था मेषात्क्रमान्नाम सदृक्फलाः स्युः ॥ १५ ॥**

प्रवासनाशाविति ॥ स्पष्टार्थम् ॥ १५ ॥

अथ ग्रहाणां वैकृतपरिहारार्थं सौषधजलस्नानदाक्षिणाश्च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

**लाजाकुष्ठबलाप्रियंगुघनसिद्धार्थैर्निशादारुभिः**
**पुंखालोध्रयुतैर्जलैर्निगदितं स्नानं ग्रहोत्थाघहृत् ॥**
**धेनुः कंब्वरुणो वृषश्च कनकं पीतांबरं घोटकः**
**श्वेतो गौरसिता महासिरज इत्येता रवेर्दक्षिणाः॥१६॥**

लाजाकुष्ठेति ॥ लाजा भृष्टशालय इति केचित् वस्तुतस्तु औषधीसाहचर्यात् लाजाशब्देन लज्जावती गृह्यते । कुष्ठं प्रसिद्धम् । बला बरियारा प्रियंगुः फलिनी घनो मुस्तः सिद्धार्थाः सर्षपाः निशा हरिद्रा दारुः देवदारुः पुंखा शरपुंखा लोध्रं प्रसिद्धम् एतैरौषधैर्युतैर्जलैः स्नानं ग्रहोत्थाघहृत् दुष्टग्रहसूचितारिष्टनाशकं स्यात् । " सप्रियंगुरजनीद्वयमांसीकुष्ठलाजातिलसर्षपखंडैः । वारिभिः सहवचैः सहलोध्रैः स्नानमत्ति निखिलग्रहपीडाम् ॥ " इत्युक्तेः । अथ रवे रविमारभ्य दक्षिणा उच्यंते । सूर्याय धेनुः । चंद्राय कंबुः शंखः । "शंखः स्यात्कंबुरस्त्रियाम्" इत्यमरः । भौमायारुणो वृषः । बुधाय सुवर्णम् । गुरवे पीतांबरम् । तच्च यथाविभवं कार्पासं कौशजं वा । शुक्राय श्वेतो घोटकः । शनये श्यामवर्णा गौः । राहवे महासिर्महामूल्यः खड्गः । केतवे छागो मेषः । एता दक्षिणाः ॥ १६ ॥

अथ ग्रहाः गंतव्यराशेः प्राक्कियद्भिर्दिनैः फलं दद्युरित्येतदुपजात्याऽऽह—

**सूर्यारसौम्यास्फुजितोक्षनागसप्ताद्रिघस्रान्विधुरग्निनाडीः ॥ तमोयमेज्यास्त्रिरसाश्विमासान्गंतव्यराशेः फलदाः पुरस्तात् ॥ १७ ॥**

सूर्येति ॥ सूर्यादयो ग्रहाः जिगमिषितराशेः पुरस्तात्पूर्वं तत्तत्संख्यघटीदिवसमासान् शुभाशुभफलदाः स्युः । यथा सूर्यो गंतव्यराशेः प्राक् पंच दिनानि फलप्रदः । भौमोऽष्ट दिवसान् । बुधः सप्त दिवसान् । शुक्रोऽपि सप्त दिवसान् । चंद्रोऽग्निनाडीर्नाडीत्रयम् । राहुर्गंतव्यराशेः पूर्वं त्रिमासान् । शनिः षण्मासान् । गुरुर्मासद्वयम् । पूर्वं फलद इत्यर्थः ॥ १७ ॥

अथावश्यकृत्ये दुष्टे तिथ्यादौ दानं शालिन्याऽऽह—

**दुष्टे योगे हेमचंद्रे च शंखं धान्यं तिथ्यर्द्धे तिथौ**

१ राळे इति भाषायाम् ।

तंडुलांश्च ॥ वारे रत्नं भे च गां हेमनाड्यां दद्या-
त्सिधूत्थं च तारासु राजा ॥ १८ ॥

दुष्टे योगे इति ॥ राजा दुष्टे व्यतीपातादियोगे तथा नाड्यां घटिकायां दुर्मुहूर्तादिदुष्टायां सुवर्णं यथाशक्ति दद्यात् । एवं सर्वत्र । शेषं स्पष्टम् ॥ १८ ॥

अथ वसंततिलकयाऽन्यदाह—

राश्यादिगौ रविकुजौ फलदौ सितेज्यौ मध्ये सदा
शशिसुतश्चरमेऽब्जमंदौ ॥ अध्वान्नवह्निभयसन्म-
तिवस्त्रसौख्यदुःखानि मासि जनिभे रविवासरादौ ॥ १९ ॥

इतिमु० चिं० चतुर्थं गोचरप्रकरणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

राश्यादीति ॥ पूर्वार्धं स्पष्टम् । अध्वान्नेति । यस्मिन्मासे स्वजन्मनक्षत्रप्रवेशे सूर्यादिवाराश्चेत्स्युस्तस्मिन्मासेऽध्वादीनि फलानि वाच्यानि । यत्र मासि रविवारे जन्मनक्षत्रे सति अध्वा मार्गो भवति एवं चंद्रवारे अन्नं भक्ष्यप्राप्तिरित्यादि ॥ १९ ॥

इति श्रीदैवज्ञानंतसुतदै० प्रमिताक्षरायां टीकायां चतुर्थं गोचरप्रकरणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

---

# अथ संस्कारप्रकरणं प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

अथ संस्कारप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र संस्क्रियतेऽनेन श्रौतेन स्मार्तेन वा कर्मणा पुरुष इति संस्कारः । स्वीयस्वीयजातौ सामान्यविशेषविहितवैदिकस्मार्तकर्मानुष्ठानद्वारा दृष्टविशेषाधायक इति यावत् । लक्षणया तदर्थोक्तदिनशुद्ध्यादि संस्कारशब्देनोच्यते । तस्य प्रकरणमुपक्रमः । ते च संस्कारा गर्भाधानादयोऽष्टचत्वारिंशत । तत्र गर्भाधानं प्रथमसंस्कारः स च रजस्वलाख्यधीनः । ततो

रजोदर्शनाच्छुभाशुभफलमुक्तं वसिष्ठेन। "प्रथमरजोदर्शनतः शुभाशुभं भवति सर्वलोकानाम्।" इति। तत्र शुभसूचकरजोदर्शनमनुष्टुभाऽऽह--

**आद्यं रजः शुभं माघमार्गराधेयफाल्गुने ॥**
**ज्येष्ठश्रावणयोः शुक्ले सद्वारे सत्तनौ दिवा ॥ १ ॥**

आद्यमिति॥ राधो वैशाखः इष आश्विनः अन्ये प्रसिद्धाः एषु मासेषु आद्यं रजः प्रथमोद्भवरजोदर्शनं स्त्रीधर्मः शुभं भविष्यच्छुभसूचकम्। तथा शुक्ले शुक्लपक्षे कृष्णपक्षे तु दशमीपर्यंतं मध्यमं ज्ञेयम्। "कृष्णपक्षस्य दशमी मध्यमं फलमादिशेत्।" इति। यावदिति शेषः। सद्वारे सतां चंद्रबुधगुरुशुक्राणां वारे सत्तनौ समीचीनलग्ने शुभस्वामिकलग्ने दिवा दिवसे आद्यं रजोदर्शनं शुभमित्यर्थः। अत्राशुभफलापवादमाह वसिष्ठः। "अशुभमपि समस्तं चार्तवं संप्रभूतसुरगुरुसितयुक्तं वीक्षिते वाऽथ लग्ने। तिमिरमिव कठोरज्योतिरुत्पत्तिकाले क्षयमथ समुपैति प्राप्नुयादीप्सितानि॥" कठोरज्योतिः सूर्यः॥१॥

अथात्र शुभमध्याशुभनक्षत्राण्यनुष्टुभाऽऽह--

**श्रुतित्रयमृदुक्षिप्रध्रुवस्वातौ सितांबरे ॥**
**मध्यं च मूलादितिभे पितृमिश्रेऽपरेष्वसत् ॥ २ ॥**

श्रुतित्रयेति ॥ श्रवणत्रयमृदुक्षिप्रध्रुवस्वातीनक्षत्रेषु सितांबरे श्वेतवस्त्रे चाद्यं रजः शुभमिति पूर्वेण संबंधः। मूले दितिभं पुनर्वसुः पितरो मघा मिश्रे कृत्तिकाविशाखे एतेषु नक्षत्रेषु मध्यमम्। परेषु भरणीज्येष्ठार्द्राश्लेषापूर्वात्रयेषु असदनिष्टम्। अत्र विशाखामूलयोर्मध्यमत्वाभिधानं वसिष्ठवाक्ये दुष्टफलश्रवणात्। "द्विदैवभे पुष्पवती प्रमत्ता कृत्यैव मेघामयवैरिसंघा। मूले प्रकामाधिकहीनसत्वा स्यात्सर्वभक्षोद्धतदोषचित्ता॥" इति॥ २॥

अथ निंद्यरजोदर्शनं शालिन्याऽऽह—

**भद्रानिद्रासंक्रमे दर्शरिक्तासंध्याषष्ठीद्वादशीवैधृतेषु ॥**
**रोगेऽष्टम्यां चंद्रसूर्योपरागे पाते चाद्यं नो रजोदर्शनं सत् ३**

भद्रेति ॥ भद्रा प्रसिद्धा। निद्रा निद्रावस्थायाम्। संध्या प्रातर्मध्याह्नसायंसंध्या। उपरागे ग्रहणे। पाते व्यतीपाते महापाते च। शेषं स्पष्टम्। आद्यं रजोदर्शनं नो सत्। अनिष्टफलमित्यर्थः ॥ ३ ॥

अथ रजस्वलास्नानमुहूर्त्तं वसंततिलकयाऽऽह—

हस्तानिलाश्विमृगमैत्रवसुध्रुवाख्यैः शक्रान्वितैः
शुभतिथौ शुभवासरे च ॥ स्नायादथार्त्तववती
मृगपौष्णवायुहस्ताश्विधातृभिररं लभते च गर्भम्॥४॥

हस्तानिलेति ॥ एषु एकादशनक्षत्रेषु शुभतिथौ रिक्तामारहिततिथौ शुभवारे चंद्रबुधगुरुशुक्रवारे आर्तववती ऋतुमती स्त्री स्नायात्। अथ विशेषमाह। मृगेति। मृगरेवतीस्वातीहस्ताश्विनीरोहिणीनक्षत्रैः स्नाता ऋतुमती अरं शीघ्रं गर्भं लभते। "लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्" इत्यमरोक्तेः। दाक्षिणात्यास्तु चतुर्थदिवस एव स्नानं कुर्वंति। अन्ये विहितदिने कुर्वंति। तत्र देशाचारतो व्यवस्थेति ॥ ४ ॥

अथ गर्भाधानं शार्दूलविक्रीडितशालिनीभ्यामाह—

गंडांतं त्रिविधं त्यजेन्निधनजन्मर्क्षे च मूलांतकं
दास्रं पौष्णमघोपरागदिवसान्पातं तथा वैधृतिम् ॥
पित्रोः श्राद्धदिनं दिवा च परिघाद्यर्धं स्वपत्नीगमे
भान्युत्पातहतानि मृत्युभवनं जन्मर्क्षतः पापभम्॥५॥

गंडांतमिति ॥ अत्र स्वपत्नीगमे गर्भाधाने एतान्दोषांस्त्यजेदिति संबंधः। एतान् कान् कान् त्रिविधं तिथिनक्षत्रलग्नानां गंडांतम्। श्रीपतिः।नक्षत्रतिथिलग्नानां गंडांतं त्रिविधं स्मृतम्। नवपंचचतुर्थानां द्व्येकार्धघटिकामितम् ॥" इति। निधनजन्मर्क्षे निधनतारां जन्मतारां च। मूलम् अंतकं भरणीं दास्रमश्विनीं पौष्णं रेवतीं

मघां उपरागदिवसं ग्रहणदिनं पातं व्यतीपातं महापातं च वैधृतिं पित्रोः मातापित्रोः श्राद्धदिनं दिवा दिवसे परिघयोगस्याद्यार्धम् । उत्पातहतानि दिव्यभौमांतरिक्षैस्त्रिविधोत्पातैर्हतानि दूषितानि भानि । जन्मर्क्षतः जन्मराशेर्जन्मलग्नाद्वा मृत्युभवनमष्टमलग्नं पापयुतं भं नक्षत्रं लग्नं वा ॥ ५ ॥

भद्राषष्ठीपर्वरिक्ताश्च संध्या भौमार्कार्कीनाद्यरात्री-
श्चतस्रः ॥ गर्भाधानं त्र्युत्तरेंद्वर्कमैत्रब्रह्मस्वातीवि-
ष्णुवस्वंबुपे सत् ॥ ६ ॥

भद्राषष्ठीति ॥ पर्वाणि विष्णुपुराणे । " चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्या च पूर्णिमा । पर्वाण्येतानि राजेंद्र रविसंक्रांतिरेव च ॥ " इति । स्कांदे तु । "कृष्णाष्टमीचतुर्दश्यौ पूर्णिमा दर्शसंक्रमे । " इति । संध्याद्वयम् । भौमसूर्यशनिवारान् । आद्यरात्रीः रजोदर्शनमारभ्य दिनचतुष्टयं त्यजेत् । कालविधाने । " षष्ठचष्टमीं पंचदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा । शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशांकार्यसितेंदुजानाम् ॥ " इति । गर्भाधानमिति । त्र्युत्तराः इंदुर्मृगः अर्को हस्तः मैत्रमनुराधा रोहिणी स्वाती श्रवणधनिष्ठाशततारकासु गर्भाधानं सत् शुभम् । गुरुः । " हरिहस्तानुराधाश्च स्वातीवारुणवासवम् । उत्तरात्रितयं सौम्यं रोहिणी च शुभाः स्मृताः ॥ आधाने मूलसार्पांत्यमशुभं सममन्यभम् । " इति ॥ ६ ॥

अथ गर्भाधाने लग्नमिंद्रवज्रयाऽऽह—

केंद्रत्रिकोणेषु शुभैश्च पापैस्त्र्यायारिगैः पुंग्रहदृष्ट-
लग्ने ॥ ओजांशगेऽब्जेऽपि च युग्मरात्रौ चित्रादि-
तीज्याश्विषु मध्यमं स्यात् ॥ ७ ॥

केंद्रेति ॥ शुभैः केंद्रत्रिकोणेषु सद्भिः पापग्रहैस्त्र्यायारिगैः सद्भिः पुंग्रहैः रविभौमगुरुभिर्दृष्टे लग्ने सति तथाऽब्जे चंद्रे ओजांशगे विषमराशीनां नवांशगे सति । अपिशब्दाल्लग्नेऽपि विषमांशगे युग्म-

रात्रौ समरात्रौ गर्भाधानं कार्यम्। मध्यमभान्याह। चित्रादितीज्याश्विषु तद्गर्भाधानं मध्यमं स्यात्। गुरुः। "चित्रादित्ये तथा तिष्यतुरगौ चेति मध्यमाः। शेषाण्यृक्षाणि दुष्टानि स्युर्निषेकाख्यकर्मणि॥" इति। एवं गर्भाधानं विधाय पुंसा किं कार्यमित्याह विष्णुः। "निद्रासमयमासाद्य तांबूलं वदनात्त्यजेत्। पर्यंकात्प्रमदां भालात्पुंड्रं पुष्पाणि मस्तकात्॥" इति गर्भाधानम्॥ ७॥

अथ सीमंतोन्नयनं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

जीवार्कारदिने मृगेज्यनिर्ऋतिश्रोत्रादितिब्रध्नभे
रिक्तामार्करसाष्टवर्ज्यतिथिभिर्मासाधिपे पीवरे॥
सीमंतोऽष्टमषष्ठमासि शुभदैः केंद्रत्रिकोणे खलै-
र्लाभारित्रिषु वा ध्रुवांत्यसदहे लग्ने च पुंभांशके॥८॥

जीवार्केति॥ गुरुरविभौमवारे निर्ऋतिर्मूलं ब्रध्नभं हस्तः एतैर्नक्षत्रैः रिक्ता (४।९।१४) अमा (३०) अर्कों (१२) रसाः (६) अष्ट अष्टमी आभिर्वर्ज्यातिथिभिरुपलक्षिते दिने मासाधिपे पीवरे पुष्टे सतीत्यर्थः। एतादृशसमये अष्टमषष्ठमासि अष्टममासे [illegible] वा सीमंतः सीमंतकर्माख्यो गर्भसंस्कारः कार्यः। तत्र [illegible]शुभग्रहैः केंद्रात्रिकोणे सद्भिः खलैः पापैर्लाभारित्रिषु सद्भिः। पुंभांशके लग्ने पुरुषराशौ विषमराशौ लग्ने नवांशे च विषमराशौ सति तदा सीमंतः शुभः। अत्र विशेषमाह कश्यपः। "चन्द्रोऽपि शुभदो ज्ञेयस्त्यक्त्वा षष्ठाष्टमव्ययान्। सीमंतलग्नादेकोऽपि क्रूरः पंचाष्टरिःफगः॥ हंति सीमंतिनीं सोऽपि तद्गर्भं वा न संशयः। न नैधने तयोर्लग्ने नैधने शुद्धिसंयुते॥" तयोः स्त्रीपुंसयोः। अस्यापवाद। "लग्नादष्टमराशीशः केंद्रगः शुभवीक्षितः। यद्यप्यष्टमभस्योक्तं दोषमाशु व्यपोहति॥" गर्गः। "सीमंतोन्नयनं कार्यं शुभांशे शुभलग्नगे। कुलीरमृगकन्याश्च वर्ज्याः शेषाश्च शोभनाः॥" इति। अत्र ग्रहबले सति कुलीरमिथुनकन्या अपि ग्राह्या इति ज्ञेयम्। अत एव मूले

लग्नविचारो न कृतः । कारिकायाम् ।"पुन्नक्षत्राणि चैतानि तिष्यो हस्तः पुनर्वसुः।अभिजित्प्रोष्ठपाचैव अनुराधाश्वियुक्तथा॥ ऋक्षस्य मध्यमे पादे द्वये सीमंत इष्यते ।" इत्युक्तम् । अथ मतांतरम् । वा ध्रुवांत्यसदहे ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयम् अंत्यं रेवती एषु तथा सतां शुभग्रहाणां चंद्रज्ञगुरुशुक्राणां वारे वा कार्यम् । गुरुः । " रोहिण्यैं-दवमादित्यं पुष्यहस्तोत्तरात्रयम्। पौष्णं वैष्णवभं चैव सीमंतादिषु संमतम् ॥ " इति । श्रीधरः। " सौम्यानां वारवर्गाः स्युः सीमंता-दिषु शोभनाः । " इति । जन्मभं सीमंते निषिद्धमाह वसिष्ठः । " बालान्नभुक्तौ व्रतबंधने च राजाभिषेके खलु जन्मधिष्ण्यम् । शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहसीमंतयात्रादिषु मंगलेषु ॥ " गुरुः । " मासप्रयुक्तकार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः । न दोषकृन्मलो मासो गुर्वादित्यादिकं तथा ॥ " यद्यपि पुंसवनस्य प्रथमकर्तव्यत्वात्तस्य पूर्वं निरूपणमावश्यकं तथापि क्वचित्सीमंतेन सहैव विधानाद्बहुषु देशेषु तथैवाचारदर्शनात्सीमंतमुहूर्त एव प्रथममुक्तः । नृसिंहः । " सीमंतोन्नयनस्योक्ततिथिवारभराशिषु । पुंसवं कारयेद्विद्वान्सहै-वैकदिनेऽथ वा ॥ " इति ॥ ८ ॥

अथ मासेश्वरान्स्त्रीणां चंद्रबलं च वसंततिलकयाऽऽह— श्रवण-गरा-

**मासेश्वराः सितकुजेज्यरवींदुसौरिचंद्रात्मजास्तनु-पचंद्रदिवाकराः स्युः ॥ स्त्रीणां विधोर्बलमुशंति विवाहगर्भसंस्कारयोरितरकर्मसु भर्तुरेव ॥ ९ ॥**

मासेश्वरा इति ॥ अष्टममासतनुपः आधानलग्नाधिपः । स्त्रीणा-मिति । विवाहे गर्भसंस्कारे गर्भाधानपुंसवनसीमंतादिरूपे स्त्रीणा-मपि चंद्रबलं ग्राह्यम् । इतरकर्मसु वस्त्रालंकारादिधारणादिषु भर्तुरेव चंद्रबलं ग्राह्यम् । यदा भर्ता मृतस्तदा पुनः स्त्रीणामेव । राजमार्त-ण्डः।"विवाहकार्यं कुसुमप्रतिष्ठा गर्भप्रतिष्ठा वनिताविशुद्धौ। अन्यानि कार्याणि धवस्य शुद्धौ पत्यौ विहीने प्रमदाऽऽत्मशुद्ध्या ॥" ॥९॥

अथ येषां पृथगेव पुंसवनमित्याचारस्तदर्थं पुंसवनमुहूर्तं विष्णुपूजामुहूर्तं चेंद्रवज्रयाऽऽह—

**पूर्वोदितैः पुंसवनं विधेयं मासे तृतीये त्वथ विष्णुपूजा॥**
**मासेऽष्टमे विष्णुविधातृजीवैर्लग्ने शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे॥**

पूर्वोदितैरिति ॥ पूर्वोदितैः सीमंतकर्मण्युदितैस्तिथ्यादिभिरुपलक्षिते तृतीये मासि पुंसवनाख्यं कर्म विधेयम् । पुमान् सूयतेऽनेन कर्मणेति पुंसवनम् । कर्मणा पुंस्त्वहेतुना । अथेति । सीमंतानंतरमष्टमे मासि विष्णुविधातृजीवैः श्रवणरोहिणीपुष्यैरुपलक्षितदिने तथा लग्ने शुभे शुभस्वामिके शुभयुते दृष्टे वा मृत्युगृहे अष्टमस्थाने शुद्धे सर्वग्रहरहिते च सति विष्णुपूजा कार्या ॥ १० ॥

अथ जातकर्मनामकरणयोर्मुहूर्तमुपजात्याऽऽह—

**तज्जातकर्मादि शिशोर्विधेयं पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेऽह्नि ॥ एकादशे द्वादशकेऽपि घस्रे मृदुध्रुवक्षिप्रचरोडुषु स्यात् ॥ ११ ॥**

[illegible]तकर्मादीति ॥ जातकर्म यद्यपि जन्मनोऽनंतरमेव विहितं [illegible]थापि संक्रांतिव्यतीपातादिदुष्टदिवसतया पित्राद्यसन्निधाने च तन्न कृतं तदा मुहूर्तविचारेण कार्यम् । गर्गः । "व्यतीपाते च संक्रांतौ ग्रहणे वैधृतावपि । श्राद्धं विना शुभं कर्म प्राप्तकालेऽपि नाचरेत् ॥" इति । अत एव कालविकल्प उक्तो नारदेन । "तस्मिञ्जन्ममुहूर्ते तु सूतकांते तथा शिशोः । जातकर्म च कर्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम् ॥" इति । अत एव जातकर्मादीनि शिशोर्जातकर्म आदिशब्दान्नामकर्मोच्यते । पर्वाणि चतुर्दश्यष्टमीकृष्णेत्यादि पूर्वोक्तानि तैः रिक्ताभिश्च ऊनतिथौ वर्जिततिथौ शुभेऽह्नि शुभवारे तथा एकादशे द्वादशे वा घस्रे दिवसे तथा मृदुध्रुवक्षिप्रचरनक्षत्रेषु तदतिक्रांतं जातकर्मादि विधेयं कर्तव्यं स्यात् । तच्च श्रवणानंतरं सचैलं स्नानं कृत्वा कार्यम् । वसिष्ठः । "श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं

स्नानमाचरेत् । उत्तराभिमुखो भूत्वा नद्यां वा देवखातके ॥ " तच्च शीतोदकेन । " कुर्यान्नैमित्तिकं स्नानं शीताद्भिः काम्यमेव च । " इति । रात्रावपि कार्यम् । वसिष्ठः । " पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा संक्रमणे रवेः । राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं नान्यथा निशि ॥ " इति । " सूतके तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ॥ " रात्रौ जलाशये गमनाशक्तौ सांख्यायनः । " दिवा यदाहृतं तोयं कृत्वा स्वर्णयुतं तु तत् । रात्रिस्नाने तु संप्राप्ते स्नायादनलसन्निधौ ॥ " इति । जातकर्मप्रयोजनमाह गुरुः । " जातकर्मक्रियां कुर्यात्पुत्रायुःश्रीविवृद्धये । ग्रहदोषविनाशाय सूतकाशुभविच्छिदे ॥ कुमारग्रहनाशाय पुंसां सत्वविवृद्धये । " इति । वसिष्ठः । " एकादशेऽह्नि विप्राणां क्षत्रियाणां त्रयोदशे । वैश्यानां षोडशे नाम मासांते शूद्रजन्मनः ॥" इति । वसिष्ठेन मासनामान्युक्तानि । " चैत्रादिमासनामानि वैकुंठोऽथ जनार्दनः । उपेंद्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्त्रिविक्रमः ॥ योगीशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णोऽनंतोऽच्युतस्तथा । चक्रधारीति चैतानि क्रमादाहुर्मनीषिणः ॥ " इति ॥ ११ ॥

अथ सूतिकास्नानमुहूर्तं वसंततिलकयाऽऽह— श्रवण- त्रा-

**पौष्णध्रुवेंदुकरवातहयेषु सूतीस्नानं समित्रभरवीज्यकुजेषु शस्तम् ॥ नार्द्रात्रयश्रुतिमघांतकमिश्रमूलत्वाष्ट्रे ज्ञसौरिवसुषड्विरिक्ततिथ्याम् ॥ १२ ॥**

पौष्णेति ॥ हयोऽश्विनी । एषु रेवत्यादिनक्षत्रेषु समित्रभरवीज्यकुजेषु अनुराधानक्षत्रसूर्यगुरुभौमवारसहितेषु सूत्याः प्रसूतायाः स्त्रियाः स्नानं शस्तम् । आर्द्रात्रयश्रवणमघाभरणीमिश्रमूलचित्रासु न शस्तम् । बुधवारे शनिवारे वसुरष्टमी षट् षष्ठी रविर्द्वादशी रिक्ताश्चासु तिथिषु च न शस्तम् । स्तन्यपानमुहूर्तं दैवज्ञवल्लभे । " रिक्तां भौमं परित्यज्य विष्टिं पातं सवैधृतिम् । मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु स्तनपानं हितं शिशोः ॥ " इति ॥ १२ ॥